



हिन्दु राज्य स्थापना हेतु संघर्ष करो



कार्यालय

२२८६ आर्यसमाज मार्ग, करौल बाग,

नई दिल्ली-११०००५

दूरभाष : ५७२४७४९

प्रधान कार्यालय

वेद मन्दिर, महात्मा वेदभिक्षु: सेवाश्रम
लेखरामनगर (इब्राहीमपुर) पो० मुखमेलपुर

दिल्ली-३६

दूरभाष : ७२०२२४६

संस्थापक

स्वर्गीय महत्मा वेदभिक्षु:

सम्पादक

पंडिता राकेश रानी

अवे-सहसम्पादक

विमलचक्र:

वार्षिक मूल्य - ५० रुपये

आजीवन - ५०९ रुपये

एक प्रति - ६ रुपये

विदेश में विमान से, ५० पौंड, ६५ डालर

समुद्री डाक से ७ पौंड, १२ डालर

विदेश में आजीवन ५००९ रुपया

दिसम्बर १९६२ वर्ष २७ अंक ८

सम्पादकीय

दिसम्बर मास : प्रेरक इतिहास

दिसम्बर मास-इतिहास की अनेक प्रेरक स्मृतियों को अपने आंचल में सहेजे आता है। हुतात्मा श्रद्धानंद, देवता स्वरूप भाई परमानंद, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय और दयानंद संस्थान के संस्थापक महात्मा वेद भिक्षु: के प्रेरक जीवन की गाथाएं, इतिहास की थाती हैं, जो इस माह किसी भी राष्ट्रभक्त और हिन्दुत्व निष्ठ के मानस पटल पर उभर आती हैं।

स्वामी श्रद्धानंद की स्मृति आते ही, हुतात्मा की उस प्रेरक संज्ञा पर विचार की प्रेरणा मानस पटल पर उभरती है, जिसको परिभाषित कर पाना अति जटिल-अति दुष्कर है। प्रतीत यही होता है कि हुतात्मा की जो संज्ञा स्वामी श्रद्धानंद के पावन नाम के साथ संयुक्त हो गयी है, उसकी कोई सटीक परिभाषा विद्वत्तजन् पुण्यात्मा, ऋषि और दृष्टा तक भी नहीं खोज सके थे। वे भी कोई ऐसी ऋचा अथवा श्लोक नहीं रच पाए जो हुतात्मा और उनके हौतात्म्य को दृष्ट्य जगत में सृष्ट कर पाता और उन्होंने भावना, कल्पना और कर्म की त्रिवेणी के भाव बोध को शब्दों में आबद्ध कर पाना, जब सर्वथा असंभव मान लिया तो हुतात्मा को होता कहा और हौतात्म्य को वेदोक्त कर्म है। परमेश्वर की सत्ता में अमरत्व का यही तत्व है। हुतात्म ही तो इस गत की सनातन शक्ति का नेत्र है, जो उसे निर्दिष्ट पथ पर गतिमान करता आया है। यही नर देह में देवजीवन है। यही तो है इस जगत का आदि और अन्त।

आत्म समर्पण आत्म बलिदान और आत्म विसर्जन को रूपाकार देने वाला शिल्पी ही तो होता है हुतात्मा। वही तो है होम की समिधा, यज्ञ का साकल्प आत्म निमग्नता की आत्माभिव्यक्ति और ऊर्जा का अन्तस रूप। हुतात्मा ही आत्मोत्सर्ग कर अक्षर, अक्षय, आत्मसत्, रूप रहित, विषय रहित उस सृष्टि सत्य को उद्भाषित करता है, जिसे दिव्यजीवन की संज्ञा मिली है। सम्व्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के बीच सेतु के रूप में कहीं वर्णित है, हुतात्मा का एक अर्थ। वह भी सीमित सा, जिसे इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है कि वही वह सर्वश्रेष्ठ पुरुष है, जिसका जीवन प्राण व्यक्तियों और सर्व-मानवी चेतना के विद्युत प्रवाह रूप में ज्योतिष होता है। वही सृष्टिकर्ता के शासन का माध्यम है। वह जिसका होता है, उसी को होता है समर्पित भी।

ऐसे अनन्य चेता हुतात्माओं की श्रेणी में आते हैं, वे महापुरुष, जिनका उल्लेख हमने प्रारम्भ में किया है। वे ऐसे प्रज्ञा पुरुष थे, जो उन महान और वरेण्य पथ प्रदर्शकों की जाज्वल्यमान मणिका में गुंथे प्रसून हैं, जिनके कारण हमारा राष्ट्र जीवन अखंड, अविरल और अविच्छन्न रहा है। इनमें से देव दयानंद के रूप में लोक विख्यात हुए परंतप के सम्पर्क में आकर मुंशी राम श्रद्धाभिभूत होकर श्रद्धानंद हो

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक: पंडिता राकेश रानी द्वारा 'जनज्ञान' मुद्रणालय दिल्ली-३६ से मुद्रित एवं प्रकाशित

गए थे। देवता स्वरूप भाई परमानंद ने भी महर्षि की विचार सुधा में अवगाहन कर वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार तथा राष्ट्र को अस्मिता को अक्षुण्ण रखने के लिए दक्षिण अफ्रीका तक में वेदामृत सरसाया था। दयानंद के स्वातन्त्र्य संदेश से अभिभूत होकर ही उन्होंने क्रांति पथ का अनुगमन कर विदेशी राज्य सत्ता से लोहा लिया था और अंडमान (काला पानी) की कालकोठरियों में क्रूर वज्रदण्डों को सहा था। दयानंद की विचार-सुधा ने ही उन्हें अंततोगत्वा यह मर्म समझाया था कि 'सुसंगठित हिन्दू राष्ट्र ही 'कृणवन्तो विश्वमार्यम्' के वैदिक आह्वान को सफलता का सोपान प्रदान कर सकता है; तो वही विश्व की विभ्रान्त मानवता को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के परम आदर्श का साकार दर्शन कराकर सुखानुभूति करा सकता है।

महामना मालवीय ने भी स्वामी श्रद्धानंद के तुल्य ही शिक्षा को परकीय चिंतन से मुक्त कराकर राष्ट्र के प्रति अनुरक्त युवा पीढ़ी के गठन हेतु हिन्दू विश्व विद्यालय की स्थापना की थी तो स्वाधीनता संग्राम के भी वह अग्रगण्य पुरोधा बनें थे और उन्होंने अपने जीवन भर के अनुभवों से यह सत्यान्वेषण किया था कि हिन्दुत्व का जागरण और हिन्दू संगठन ही राष्ट्र-निर्माण का महान मंत्र है। उन्होंने अपनी नश्वरकाया का परित्याग करते हुए जो अंतिम संदेश दिया था, उसमें हिन्दू जाति से संघबद्ध होने का आह्वान कर उसे ही राष्ट्र रक्षण की संजीवनी सुधा निरूपित किया था।

दयानंद संस्थान के संस्थापक महात्मा वेद भिक्षु भी दिव्य संकल्प में ढले ऐसे योद्धा थे, जिन्होंने स्वामी श्रद्धानंद के महान बलिदान, देवता स्वरूप भाई परमानंद के प्रेरक जीवन और महामना मदन मोहन मालवीय के अंतिम आह्वान को अपने अंतस में संजोया था। वेदों के घर-घर में प्रचार के दयानंद के सुस्वप्न की पूर्ति को उस महात्मा ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। हुतात्मा श्रद्धानंद के हिन्दुत्व, हिन्दू संगठन और शुद्धि अभियान के अधूरे कार्य पूर्ण करने की लगन को मन में बसा कर, देवता स्वरूप भाई परमानंद के हिन्दुत्व विहीन राजनीति आत्मघात का पथ इस दर्शन को अंगी, महामना मालवीय के वलिष्ठ हिन्दू जगत ही स्वराज्य रक्षा की संजीवनी है, इस चिंतन को उन्होंने अपने कर्म कौशल में उतारा था। हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों के कर्णधारों को एक मंच पर लाने का अथक प्रयास ही उनकी जीवन साध थी। उन्होंने ही शंकराचार्य और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान को एक मंच पर लाने में सफलता पाई थी तो अयोध्या में श्री राम जन्म भूमि, कृष्ण जन्म भूमि तथा विश्वनाथ मन्दिर वाराणसी के उद्धार को

राष्ट्रीयता से जुड़े मुद्दे के रूप में सर्वप्रथम १९८३ में उपस्थित किया था।

राष्ट्र आज भी समस्याग्रस्त है। मंडल और महामंडल के ताने-बाने वर्ग मतवाद तथा जाति-पांति के स्वार्थों को पुनः उभार कर समस्याओं के हल के निर्बल तर्क-वितर्क देते हुए सुने जा रहे हैं। राम देश की दो धुरियों को जोड़ने वाले प्रेरणा पुरुष हैं, उनके पावन स्मृति स्थल को भी राजनीति की दल-दल में घसीटने वाले जन आज खुल कर खेल रहे हैं। आज 'माता की वन्दना' के मंत्र 'वंदेमातरम्' में सांप्रदायिकता की गंध लेने वाले 'भारत के भाग्य विधाताओं, की वंदना मात्र को तारक मंत्र मान रहे हैं। जबकि भारत के भाग्य विधाताओं ने इसी परम पुनीता भारत माता के वंदन, स्तवन को अपने जीवन की साध माना था।

आज आवश्यकता है उन महान आत्माओं के जीवन-दर्शन और संदेशों को हृदयंगम कर कर्म पथ पर बढ़ने की जो अपनी आत्मा का अमृत अन्नदान कर मरण-संकिंत मार्ग से अनन्त यात्रा पर प्रस्थान कर गए थे। उन्हीं का जीवन दर्शन हमें विपरीत परिस्थितियों के प्रबल प्रभंजन में राष्ट्र को विभाजित करने वाले साम्प्रदायिक और वर्ग तथा जातिवादी विचारों से संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करेगा।

आओ, हम प्रार्थना करें कि हे हुतात्माओं, देश और धर्म हेतु सर्वस्व समर्पित कर देने वाले वरेण्य पुरुषों, चंदन के तुल्य अपने शरीर को घिस-घिस कर मिटा देने वाले तपस्वियों, हे परंतपो अपना कर्षणापूर्ण आशीर्वाद देकर हम जैसे अकिंचन याचकों की झोली साहस-सहित संघर्ष करने के महान गुण से भरने की कृपा करो। हे भारत-माता के मृत्युंजय सपूतों, हमें भगीरथ के समान राष्ट्र के पुनरुद्धार कार्य में जुटने के अपेक्षित धैर्य और शौर्य से समृद्ध करो ताकि काल के वज्राघातों और अपने परायों के उत्पातों को झेलते हुए भी हम भारत माता को उसका विलुप्त हुआ गौरव पुनः प्रदान कराने में इतना योगदान दे ही सकें, जितना एक तुच्छ सी गिलहरी ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को सागर पार कराने हेतु सेतु के निर्माण में प्रदान किया था। बलिष्ठ भारत ही तो विश्व बंधुत्व और शांति की कल्पना को साकार रूप प्रदान कराने की प्रतिश्रुति प्रदान करने में समर्थ और सक्षम हो सकेगा।

उन महामानवों का पावन स्मरण, उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना ही युग धर्म है। उनकी स्मृति में शतशत नमन।।

इस अंक में पढ़ें

(आवश्यक नहीं कि सम्पादक लेखकों की रचनाओं में अभिव्यक्त सभी विचारों से पूर्णतः सहमत हो।)

सम्पादकीय	१	वेदों में गणित / डा० कैलाश	२६
महात्मा वेदभिक्षु की अमर वाणी	४	अंत समय की तैयारी / देवी प्रसाद भास्कर	३७
आप ही के पत्र	६	संस्कृति की प्रतिष्ठा और गौ / उपेन्द्र दत्त शर्मा	३९
दुर्भाग्य पूर्ण निर्णय / गिरी लाल जैन	८	ये फूल महक जाये तो, कुछ रोशनी तो हो / सन्तोष कण्व	३२
सुख कैसे प्राप्त हो / स्वामी ब्रह्ममुनि	१०	हिन्दुत्व: भारत की एकता का मूलसूत्र / वामन दास अग्रवाल	३३
अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द / वेद भक्त	१२	इतिहास की भूमिका / केवल राम मलकानी	३७
देवता स्वरूप भाई परमानन्द / दिव्या श्री	१८	आज का मैक्सिको बीतेयुग का मक्षिका / डा० श्याम सिंह शशि	४०
वे कहते थे कि समय कम है / धर्मपाल शर्मा	२१	नारी स्वतन्त्रता की सीमा / नीलम लूथरा	४२
पृथ्वी सम्मेलन और वेद डा० धर्मवीर	२२	वीर बालक: बाजीराव / डा० रामसिंह	४४
राष्ट्र की समस्याएँ और समाधान / बाबा साहेब देवरस	२४	हन्दी एवं अदरक की खेती / कैलाश नाथ त्रिपाठी	४६

आप हमें इस प्रकार भी सहयोग दे सकते हैं।

५०१ रु० भेज कर

**जनज्ञान मासिक
के आजीवन सदस्य बलिए।**

तथा २०१६ रु० उपहार साहित्य
(१५१ रु० के अमूल्य ग्रन्थ "वैदिक सम्पत्ति" और
५० रु० की "वैदिक गीता" हिन्दी भाष्य सहित)
प्राप्त कीजिए।

दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, महात्मा वेदभिक्षु:
सेवाश्रम इब्राहीमपुर, पो. आ. मुखमेलपुर,
दिल्ली-११००३६

जो भी है हिन्दू का घर, गुंजे वहाँ वेद का स्वर

(परमात्मा की अमरवाणी)

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

(मन्त्र-शब्दार्थ-छन्द-स्वर-देवता आदि सहित)

लागत मूल्य ७०० रु०। साथ में ३०१ रु० का श्रेष्ठ
वैदिक साहित्य (वैदिक सम्पत्ति, महाभारत एवं
गीता हिन्दी भाष्य सहित तथा अन्य उपयोगी
साहित्य) उपहार में प्राप्त करें।
साहित्य न लेना चाहें तो सम्पूर्ण वेदभाष्य ५२५ रुपये
में प्राप्त करें।

२२८६, आर्य समाज मार्ग, करोलबाग, नई दिल्ली-५

सत्य को समझो



अंधकार, गहरा अंधकार, चारों ओर अंधकार, बीहड़ झंझावातों से घिरे हुए, फिर भी सत्य का सूर्य हाथों में पकड़े, अंधकार की समाप्ति के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं। पापों के तूफान में धर्म की ध्वजा फहराने का संकल्प हमारे मानस की चरम अभिलाषा है।

आज के वातावरण में जब सत्य, ईमानदारी और त्याग की भावना केवल शब्दों में या अपवाद रूप में ही दृष्टिगोचर हो रही हो, तब कौन समझेगा हमारे आदर्शों को, व्यवहार और कठिनाइयों को।

देश, धर्म और सत्य तीनों भँवर में हैं। नेता नामधारी व्यक्तियों के पास प्रस्ताव, योजनाएं, भाषण और घोषणाएं तो हैं जिस पवित्र बुद्धि से त्याग और बलिदान से संकटों को काटा जा सकता है, उस का सर्वथा अभाव है। पिछले वर्षों की कहानी देश की तबाही की कहानी है। इसका उत्तर प्रत्येक क्षेत्र और समाज पर पड़ा है। समय के प्रभाव में बड़े-बड़े शूरमा बह जाते हैं।

हमारा दोष इतना है कि हम समय के साथ बहने के स्थान पर उसे अपने साथ बहाना चाहते हैं। 'धर्म' को विष प्रचारित करने के वातावरण में हम धर्म की गंगा बहाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि 'भारत' भारत रहे, अपनी परंपराओं का पालन करे। विदेशों का अधानुकरण हमें पतन के उस गहरे गर्त में गिरा देगा, जहां से उठने के लिए

न जाने कितने ऋषि दयानन्द जैसे महापुरुषों की आवश्यकता होगी।

धर्म का भी आज आधुनिकीकरण हो रहा है। योग तो "up-to-date" हो ही गया है। धार्मिक संस्थाओं की कार्य पद्धति पर भी समय का प्रभाव हावी है। मन के हर कोने में हमारे जीवन दर्शन की एक ऐसी पद्धति ने अधिकार कर लिया है जिसमें और सब कुछ है पर जीवन नहीं है।

भारत के रहने वाले ५५.६० करोड़ व्यक्तियों के मन को बदलना साधारण कार्य नहीं है। अपने इस जीवन में हम इसे पूरा संभवतः न कर सकें, क्योंकि जब अधिक समय तक जीवन की संभावना भी प्रतीत नहीं हो रही, फिर भी हमें इतना निश्चित विश्वास है कि अपने प्रयत्नों से हम ऐसे बीज अवश्य बिखरा देंगे जो समय पाकर फलेंगे और हमारे जीवन लक्ष्य को पूर्ण कर सकेंगे।

धर्म और अधर्म के इस युद्ध में अधर्म भी धर्म की खाल ओढ़ कर बढ़ रहा है। सत्य को लुप्त कर असत्य का रूप धारण करना चाह रहा है। धर्म क्या है? कहां है? कैसे है? यह सब जानना आज के युग में साधारण नहीं रहा हमारे घर आंगन में, परिवारों में, जो बूछ भी हो रहा है, हम स्वयं निर्णय करें कि उसमें धर्म कहां है?

कहां है सत्य पालन की भावना? कहां है ईमानदारी, और कहां है प्रतिज्ञा पालन? आप सोचिये तो सही कि धर्म के दस लक्षणों में से आपने कितनों को धारण किया? प्यार और सबकी सुख भावना के आधार पर धर्म की गाड़ी चलती है। त्याग और श्रम से वह बढ़ती है, ईमानदारी से दौड़ती और सत्य से संभलती है। जीवन के हर क्षण का हमारा चिन्तन यदि अपने लिए न होकर दूसरों के लिए होता है तो हम धर्म भावना के बल से झूली होकर धर्म पथ पर चलने के अधिकारी बनते हैं। उपदेश नहीं, आचरण से धर्म उभर सकता है। आप भी सोचिए तो सही कि जो आप कहते हैं उसके पालन का प्रयत्न आप ने कितना किया है?

हम चल रहे हैं, चलते रहेंगे। अधर्म से, अज्ञान से,

हमारा संघर्ष चलता रहेगा हम पुकारते रहेंगे, कोई सुने या न सुने! कोई साथ आए या न आये, कोई प्रशंसा करे या गालियां दे, हमें चिन्ता नहीं हम ने वह 'सोम' पिया है जिस के प्रभाव ने हमें वर्तमान के प्रभाव से मुक्त कर दिया है?

ज्ञान की गंगा में गोते लगाने के लिए सभी को आमंत्रण! धर्म युद्ध में भाग लेने के लिए हमारा आह्वान! अज्ञान-अंधकार पर प्रकाश के लिए कर्म करने की पुकार हम कर रहे हैं-- करते रहेंगे। प्रभु के पुत्रो! सुनो ध्यान से, और राह बदलो। अपने को, अपने मन को, अपने विचारों को बदलो। देखो कहीं शैतान की छाया ने आप के विचारों को गंदला तो नहीं कर दिया? सोचो और प्रभु की शरण में आओ! प्रभु की राह पर चलो! प्रभु की आवाज सुनो, देखो वह तुम्हें क्या कह रहा है। जिस दिन सुन लोगे उस दिन तुम समझ सकोगे कि हम क्या कह रहे हैं?

मृत्यु आ रही है, हम चले जाएंगे, पर हमारी यह पुकार गूंजती रहेगी। जब हम नहीं होंगे तब भी यह पुकार गूंजेगी और आप से कहेगी।

सत्य को समझो, धर्म को समझो,
अपने को समझो, और ईश्वर की राह पर चलो।

जिस दिन सभी इस पुकार को सुन लेंगे उस दिन धरती पर ज्ञान गंगा बहेगी और सारे प्रभु पुत्र उसमें स्नान कर अपना जीवन पवित्र कर सकेंगे।

अमर शहीदों के चरणों में

शहीद श्रद्धानन्द के दर्शन का सौभाग्य हमें नहीं

मिला, हमने उनका चित्र देखा है और पढ़ी है उनकी जीवन गाथा। हम ने उन के मन की भावनाओं को थिरकते हुए देखा है। उनके मानस में उठती हिलोरों के दर्शन भी हम कर सके हैं। हम ने उन की साधना और त्याग की शक्ति को ज्योतिर्मय रूप में देखा है। किन्तु हम सोचते हैं कि ऐसे दिव्य पुरुष की भावना भी जिनमें जीवन नहीं डाल सकी, उन्हें कौन जगाएगा?

शुद्धि का डंका, आलम में हम गुंजा न सके। अधर्म पर चलने वालों को सच्चा धर्म हम बता न सके। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को हमने भुला दिया और अमर शहीद की जय बोलते रहे, आखिर यह कैसा मजाक है?

हम उन के बलिदान दिवस पर कैसे श्रद्धांजलि दें, अपने भीतर उस महापुरुष के चरणों में बैठने की शक्ति का अभाव हम अनुभव कर रहे हैं, फिर भी हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें शक्ति दे कि हम उन की राह पर चल सकें।

त्याग--तप--बलिदान में वह सबसे बढ़कर थे। व्यवहार में वह धर्मात्मा और कर्तव्य में अग्रणी थे! सत्य उन का जीवन और धर्म उनका प्राण था। काश कि हम भी श्रद्धा और आनन्द से युक्त होकर वेद की ध्वजा भूमंडल पर फहराने का दिव्य स्वप्न पूर्ण करने के लिए अपने जीवन की आहुति देने में सफल हो सकते। शक्ति दो, देव! कि हम 'शहीद' की राह पर चल कर 'धर्म' की रक्षा के लिए कुछ कर सकें। हमारे कर्म ही वीर श्रद्धानन्द की स्मृति में सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं।

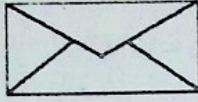
“जनज्ञान मासिक दिसम्बर १९७३ से उद्धृत”

हमारे मन और मस्तिष्क पर ऋषि दयानन्द का जो प्रभाव है, उसके प्रकाश में हमारा जो भी चिन्तन है उसमें कोई उलझन हमारे सामने नहीं है। हम चाहते हैं कि ऋषि के सभी अनुयायी एक साथ मिलकर करें :-

१. वेद का, वेद की विचार धारा का प्रचार । २. अध्यात्मवाद का, प्रभु से मिलने का मार्ग दर्शन । ३. मत-वादों पर प्रबल प्रहार । ४. जातिगत वर्ग भेदों का समूल नाश । ५. धर्म के उदात्त स्वरूप का संरक्षक । ६. वेद - सत्यार्थ प्रकाश - ऋषि जीवन का विभिन्न भाषाओं में प्रसार । ७. अज्ञान-पाखंड का प्रबल खंडन । ८. संगठन, आर्य समाज व संस्थाएँ करें कार्य संचालन । ९. उपदेशकों की सेना हो तैयार और दिया जाय उन्हें सर्वोच्च सम्मान । १०. संसार का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर को माने, जाने और उससे मिले । संसार एक हो, एक राह पर चले, एक ढंग से सोचे और अनेकता मिटे ।

- महात्मा वेद भिक्षु:

आप ही के पत्र



राम मन्दिर कब बनेगा?

आदरणीया,

जनसाधारण पूछते हैं, क्या राम जन्म भूमि मन्दिर बनेगा? कब बनेगा?

मेरा उत्तर है, यदि प्रश्न ही पूछते रहे तो नहीं बनेगा। जब भी कोई वस्तु प्राप्त करनी होती है, तो उसका पूरा मूल्य देना होता है। यदि सफलता चाहिए तो संघर्ष करना ही होगा यदि विजय चाहिए तो युद्ध प्रतिपक्ष से अधिक जन बल तथा साधन एकत्र करना ही होगा।

क्या आप हृदय से चाहते हैं कि मन्दिर बने? तब प्रश्न न पूछें। बताएं क्या आप मूल्य देने का तैयार हैं? क्या आप योग दान देने को तैयार हैं? क्या आप इस महान् यज्ञ में अपने भाग की आहुति देने को तैयार हैं?

यदि हां, तो अब प्रश्न पूछना बन्द करें। विचार कीजिए आप क्या योगदान दे सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति सहयोग दे। सक्रिय सहयोग दे।

और आप भी कहिए "मन्दिर बनेगा। संसार की कोई शक्ति इसको रोक नहीं सकती।"

मन्दिर भी बनेगा। राष्ट्र निर्माण भी होगा।

राजेन्द्र कुमार गोयल, एडवोकेट,
चावड़ी बाजार, दिल्ली

दूरदर्शन में उपयोगी परिवर्तन हों।

दूरदर्शन एक महत्वपूर्ण उपकरण बन चुका है। किसी भी छोटे बड़े ग्राम की छत पर चढ़ कर देखें, तो अनगिनत ऐन्टीना नजर आयेंगे। संस्कार देने और प्रचार का इससे बड़ा और कोई साधन नहीं है। पत्तू नहीं क्यों इसे निगम के सुपुर्द कर देना निश्चय ही 'हिमालय' जैसी भूल हो जायेगी। यह साधन ऐसे लोगों के हाथ में चला जायेगा, जिन का कुछ पता नहीं, कि वे किस मनोवृत्ति के होंगे। यदि वे अफसर, व्यापारी या अवसर से लाभ उठाने वाले हुए, तो निश्चय ही वे घटिया और सस्ती ऐसी पिक्चरों में धर देंगे, जहां से उन्हें 'निगम' के लिये वैध आमदनी और निगम के लिये मोटी "अवैध" आमदनी हो सके। राष्ट्र का हित उन लोगों के लिये कोई महत्व न रखेगा। कुछ आचारभ्रष्ट लोग तो इसे अपनी कुवासना पूर्ति का साधन भी बना सकते हैं।

जिस दूरदर्शन के कार्यक्रमों को ७ से ११ वर्ष के बच्चे, और अच्यस्क नव युवतियां दिन रात देखती हैं, उसमें आचार

भ्रष्ट करने वाली घटिया सस्ते मूल्य की और कामोत्तेजक, गन्दे गीतों से भरी पिक्चरें दिखाना, राष्ट्र को गिरावट के गढ़ में गिराना कहाँ की राष्ट्रीय भावना है?

कृपया इन 'महत्वपूर्ण' साधन को राष्ट्र निर्माण और केवल राष्ट्र-निर्माण के लिये उपयोग में लाया जाना चाहिए।

आवश्यक है दूरदर्शन पर घटिया मनोरंजन पर पूरी पाबन्दी लगे उसका 'मुख्य ध्येय' राष्ट्र निर्माण ही हो उसमें केवल और केवल देश-हित सामग्री ही दर्शाई और दिखाई जाये।

—कृष्ण चन्द्र आर्य प्रताप औषधालय - अबोहर

‘वैदिक धर्म’

आदरणीय, संपादक जी,

जनज्ञान मासिक पत्रिका कार्यालय आर्य समाज मार्ग करौलबाग नई दिल्ली।

आपको सहर्ष कोटी सादर नमस्ते स्वीकार होवे। मान्यवर जी आपके यहां मे प्रकाशित मासिक पत्रिका "जनज्ञान" वैदिक धर्म से ओतप्रोत है। अध्यात्मिक ज्ञान की बेजोड़ पत्रिका है। इस पत्रिका से हमारी आदिवासी बालक छात्रावासी छात्रबहुत प्रभावित हुए हैं। आपके हम आभारी हैं।

—सुन्दरलाल चौधरी - बुरहानपुर

महान वीरांगना हैं आप

माता जी,

आपका जनज्ञान मासिक हम सब के बीच इतनी प्रेरणा दायक मासिक पत्रिका है, जिसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। इसे पा कर हर पल हमें आत्मिक शक्ति प्राप्त होती रहती है। आपका स्नेह सूत्र इस रक्षा बन्धन के शुभ अवसर पर मिला, इसे पाकर बड़ा हर्ष हुआ। मैं आपने इस रक्षा सूत्र से धर्म रक्षा के लिए प्रेरित किया है। मैं आपके सिद्धान्तों, कार्य क्रमों तथा उद्देश्य की रक्षार्थ कार्यरत हूँ। माता जी आपने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपनी वीरता द्वारा नारीत्व को परिचय दिया। और देव दयानन्द के सपने को आप साकार कर रही हैं। भारतीय संस्कृति को फिर से नई प्रेरणा दे रही है। आप हिन्दू समाज की मार्ग दर्शक हैं। मैं आप उन वीरांगनाओं में एक हूँ जो कि दुर्गावती, रानी लक्ष्मी बाई जैसी वीरता के द्वारा नारीत्व का परिचय दे रही हैं।

—शिव शंकर द्विवेदी, ग्राम कुण्डा (बिहार)

सबसे पहले मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उच्चतम न्यायालय ने मण्डल आयोग की सिफारिशों पर २७ प्रतिशत आरक्षण दिए जाने को उचित ठहराते हुए जो निर्णय किया है, उसको अभी मैंने पूरी तरह से पढ़ा नहीं है। अभी जो मैं लिख रहा हूँ वह पूरी तरह से समाचार पत्रों में इस निर्णय के बारे में छपे समाचारों और उनके विश्लेषणों पर आधारित है।

लेकिन मैं यह जरूर बताना चाहूंगा कि यह देखकर मुझे बहुत धक्का लगा है कि उच्चतम न्यायालय जैसे स्तर के न्यायाधीशों ने श्री मण्डल के इन काल्पनिक विचारों को एक रपट के रूप में वैधता प्रदान कर दी, जिसे किसी भी स्तर में एक गंभीर रपट माना ही नहीं जा सकता। मण्डल आयोग ने अपनी तथाकथित छानबीन के बाद जो दस्तावेज प्रस्तुत किया वह पूरे तौर पर एक ख्याली पुलाव था। उसे किसी भी हालत में रपट नहीं कहा जा सकता। यह मैंने बार-बार कहा है।

मण्डल आयोग ने कोई जांच-पड़ताल नहीं की। ५०-६० साल पुराने आंकड़ों पर निष्कर्ष निकाले, और वे आंकड़े भी पूर्वाग्रह ग्रस्त थे। वे तो अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के आधार पर गढ़े गए थे। मण्डल जैसे गंभीर प्रकृति के आयोग का सबसे पहला काम यह होना चाहिए था कि वह अपने उद्देश्य को परिभाषित करता, उसका वर्गीकरण करता। इसके विपरीत मण्डल आयोग ने एक नया जाति वर्ग 'अन्य पिछड़ी जाति' की रचना कर डाली। और उसको भी कभी परिभाषित नहीं किया गया जिससे स्पष्ट हो सके कि इस वर्ग में कौन सी जातियाँ हैं और कौन सी नहीं। यहां तक कि अन्य पिछड़ी जातियों की अवधारणा को भी परिभाषित नहीं किया गया। सामान्यतया 'अन्य' का अर्थ लिया जाता है। कि अनुसूचित जाति और जनजाति के अलावा अन्य जातियाँ। अब सवाल उठता है कि अनुसूचित जाति और जनजाति के अलावा अन्य जातियों को विशेष सुविधाएं देने का उद्देश्य क्या है? उन दोनों वर्गों को विशेष सुविधाएं देने के पीछे तो यह विचार था कि शताब्दियों से हिन्दू समाज ने उनके प्रति अन्याय किया है, इसलिए पश्चातापस्वरूप वर्तमान समाज को उन्हें विशेष सुविधाएं देनी ही चाहिए। यह कोई नहीं कह सकता कि जिस प्रकार की दुर्दशा या व्यवहार अनुसूचित जाति और जनजाति के प्रति सदियों पूर्व हुआ, वैसा ही उन जातियों के प्रति हुआ जिन्हें आज अन्य पिछड़ी जातियों में

शामिल किया जा रहा है।'
कृत्रिम विभाजन

अब आप पिछड़ी जातियों का जिक्र करते हैं तो अगड़ी जातियों का भी जिक्र होता है। अब सवाल उठता है कि अगड़ी या विकसित जातियाँ कौन सी हैं? पिछले २०० वर्षों से ब्राह्मणों को हर प्रकार की आलोचना का शिकार बनाया जाता रहा है। लेकिन ये लोग यह नहीं सोचते कि इस प्रकार का प्रयास ईसाई मिशनरियों द्वारा शुरू किया गया था। क्योंकि वे ब्राह्मणों को अपमानित कर हिन्दू समाज के बुद्धिजीवी वर्ग, हिन्दू नेतृत्व को ध्वस्त करना चाहते थे। जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है, इस दृष्टि से ब्राह्मणों को पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। लेकिन आर्थिक दृष्टि से यह बात असंदिग्ध रूप से सिद्ध की जा सकती है कि ब्राह्मणों में भी बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जो गरीबी की रेखा के नीचे या उससे जरा ही ऊपर जीवनयापन कर रहा है। अब इस जाति को किस प्रकार विकसित या अगड़ी जाति कहा जा सकता है? मण्डल इन बारीकियों की ओर गया ही नहीं और इस आयोग से जुड़े प्रत्येक विशेषज्ञ ने सार्वजनिक रूप से यह कहा कि यह रपट ही नहीं है। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिस सरकार ने रपट लागू करने का आदेश दिया, उसने रपट के बारे में जांच-पड़ताल ही नहीं की थी ०पी० सिंह ने इस रपट के बारे में कोई चर्चा आयोजित नहीं की। कोई मंत्रिमण्डलीय दस्तावेज तैयार नहीं किया। किसी से रपट की समीक्षा नहीं करवाई। रपट को लागू करने का फैसला लेने से पहले उन्होंने इस विषय में कोई ध्यान नहीं दिया था। पाठक कृपया यह ध्यान रखें कि जहां-जहां मैंने रपट कहा है उसका अर्थ मण्डल आयोग के ख्याली पुलाव ही हैं। इसे रपट न पढ़ें, बल्कि एक काल्पनिक रचना ही मानें। असल बात तो यह है कि यदि जनता दल में विद्रोह नहीं हुआ होता, देवीलाल ने जनता दल से दलबदल न किया होता और उन्हें जनता दल से न निकाला गया होता तो मण्डल आयोग की रपट को लागू ही नहीं किया जाता।

जब यह मामला उच्चतम न्यायालय को दिया गया, तो उससे यह अपेक्षा की गई थी कि वह इस रपट की गहराई से जांच करेगा। मेरे विचार में उच्चतम न्यायालय ने यह काम नहीं किया है। और यदि उच्चतम न्यायालय ने इस रपट की जांच की है और उसके बाद उसे वैध करार देने वाला निर्णय किया है, तो मुझे यह कहते हुए दुख है कि जिस

दृष्टि से इस देश की सर्वोच्च न्यायपालिका काम कर रही है, उससे जनता की अपेक्षा पूरी नहीं हुई है। मेरा यह व्यक्तिगत मत है कि कोई भी न्यायाधीश, चाहे वह किसी भी स्तर की योग्यता रखता हो और किसी भी निष्पक्षता और विवेक से युक्त हो, वह किसी भी स्तर में इस रपट को वैध नहीं मान सकता। मण्डल आयोग के अध्यक्ष श्री मण्डल ने स्वयं कहा था कि उन्होंने 'अन्य पिछड़ी जातियों' के बारे में गहराई से छानबीन नहीं की, क्योंकि उन्हें इस बारे में 'पहले से गहन जानकारी थी'। यह तो ईश्वरीय वक्तव्य जैसी बात हो गई। किसी व्यक्ति को इतनी गहरी और व्यापक प्रभाव वाली रपट तैयार करते समय अपनी व्यक्तिगत 'गहन जानकारी' पर निर्भर रहना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है।

आधार क्या है?

आरक्षण ५० प्रतिशत ही क्यों? ७५ प्रतिशत कर दो, या सभी नौकरियों को आरक्षित कर दो। विडम्बना यह है कि जिस प्रकार आज की राजनीति चल रही है, किसी वरिष्ठ राजनेता में इस न्यायिक पथ विचलन के बारे में बोलने की हिम्मत नहीं है।

आज हम एक अत्यंत प्रतिस्पर्धी युग में जी रहे हैं। अगर हम शेष विश्व से प्रतिस्पर्धा हेतु तैयार न हुए तो देश का भविष्य अधर में लटक जाएगा।

प्रतिस्पर्धा का अर्थ है केवल एक कसौटी को मान्यता; और वह है निपुणता। यदि आप सामाजिक विसंगतियों के समाधान हेतु नौकरियों में आरक्षण करेंगे तो इसका अर्थ विनाश को आमंत्रण होगा। तब सामाजिक समता का विचार भी छोड़ना होगा। सामाजिक समता की संभावना तभी बढ़ती है जब राष्ट्रीय संपदा और जीवन स्तर में वृद्धि होती है। विषमता तब बढ़ती है, जब देश की समृद्धि घटती है।

जाति व्यवस्था मान्य

मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करना सामाजिक-अभियांत्रिकी या समाज की कृत्रिम रचना का प्रयास है, जिसे अंग्रेजी में सोशल-इंजिनियरिंग कहते हैं। कम्युनिस्ट देशों ने ऐसा ही प्रयास किया था और उन सभी का विनाश हो गया। उनमें से एक भी नहीं बचा। समाज का अपना तर्क, गति, विज्ञान और परिवर्तन का शास्त्र होता है। जहाँ तक हिन्दू समाज का सम्बंध है वह असाधारण रूप से अपने ही नियमों के अन्तर्गत बदल रहा है। आप आंकड़ों का अध्ययन करें तो पाएंगे कि पिछले ४०-४५ वर्षों में हिन्दू समाज के निचले वर्ग ने ऊपर की ओर उठने में क्रांतिकारी प्रगति की है, जो हिन्दू इतिहास में अभूतपूर्व है। भारतीय प्रशासनिक सेवा, विदेश सेवा, पुलिस सेवा जैसी अखिल

भारतीय कुलीन शासकीय सेवाओं में अब अधिसंख्य सफल उम्मीदवार निम्न मध्यम वर्ग के होते हैं। क्या यह समाज की प्रगतिशील गति नहीं है?

उच्चतम न्यायालय ने अन्य पिछड़े वर्ग के अतिरिक्त जाति-समुदायों में गरीबी के आधार पर निर्धारित १० प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान को भी रद्द कर दिया है। किस आधार पर ऐसा किया गया? यदि एक वर्ग के लोग आर्थिक और शैक्षिक पिछड़ेपन के आधार पर आरक्षण के पात्र हैं तो अन्य वर्गों के वैसे ही पिछड़े हुए लोगों को आरक्षण क्यों नहीं मिल सकता? यह कैसी समानता और न्याय है? वैसे भी भारतीय संविधान, व्यक्ति को मान्यता देता है, जाति, वर्ग या समुदायों को नहीं; अपवाद स्वरूप केवल अल्पसंख्यकों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं। मण्डल आयोग की सिफारिशों को वैध करार देकर न्यायालय ने जाति व्यवस्था को मान्य कर दिया है।

भ्रूषण-भविष्य

उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया है कि पिछड़े वर्गों में आर्थिक दृष्टि से उन्नत उच्च स्तरीय 'पट्टी' को आरक्षण की सुविधाएं न दी जाएं तथा प्रत्येक राज्य में पिछड़े वर्गों में शामिल होने वाली जातियों की सूची बनाने के लिए आयोग बनाए जाएं। एक तो यह सब बहुत लम्बा काम है और उससे लगता है कि आरक्षण अनेक वर्षों तक अब लागू ही नहीं हो पाएगा। दूसरी, पिछड़े वर्गों में भी जो सबसे उन्नत वर्ग है, उसे सरकारी नौकरियों में आरक्षण के अधिकार से अलग कर उच्चतम न्यायालय ने निपुणता का स्तर और गिराने का प्रयास किया है। मैं तो चाहूंगा कि पिछड़ों में केवल जो शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत वर्ग है, उसको ही सरकारी नौकरियों में वरीयता दी जाए। क्योंकि ये नौकरियां रेवड़ियां नहीं हैं। यह जनता का काम करने के लिए लोगों को दिया जाने वाला अवसर है। आप कल्पना कीजिए कि एक वह यादव जिसकी दो-तीन पीढ़ियां शिक्षा ग्रहण कर चुकी हैं और जो प्रगति की मुख्य धारा में शामिल हैं, यदि किसी जिले का कलेक्टर बनता है तो उससे बेहतर काम की उम्मीद की जा सकेगी या उस दूसरे यादव से जो अपने परिवार में शिक्षित होने वाला पहला व्यक्ति है?

कुछ भी हो, मैं भारत का बहुत संघर्षपूर्ण और टकराव वाला भविष्य देख रहा हूं। मुझे लगता है कि आने वाले दिनों में इतना भ्रूषण संघर्ष होगा कि वर्तमान समय और संघर्ष की पिछली यादें शान्तिपूर्ण और स्थिर शासनकाल प्रतीत होगी।

-(पाचजन्य से साभार)

सुख कैसे प्राप्त हो?

-स्वामी ब्रह्ममुनि

निराशा में सुख नहीं, आशा की मृगमरीचिका में सुख नहीं। फिर सुख है कहाँ? प्रत्येक मनुष्य के अन्तर को मथने वाला यह शाश्वत प्रश्न एक तपस्वी वैदिक विद्वान के द्वारा आपके समक्ष सुलझा हुआ प्रस्तुत है।

-संपादक

साधारण सुख इन्द्रियों का सुख होता है क्योंकि 'सुख' अर्थात् उत्तम प्रवेश इन्द्रियों का जिसमें हो गया हो वह सुख इन्द्रियों की अनुकूल अनुभूति है, विशेष सुख आनन्द के नाम से व्यवहृत होता है जो इन्द्रियों से परे मन या मानस भूमि में अनुभूत होता है वह 'आनन्द' उसका किसी एक इन्द्रियों से सम्बन्ध न होकर समस्त इन्द्रियों के आयतन रूप मन या अन्तःकरण में स्थिर होता है और वह सभी इन्द्रियों का समान (सांझा) सुख प्रतीत होता है। वह 'शम' नाम से भी कहा जाता है। अति विशेष सुख मन से भी परे आत्मा में या स्वात्मा से आत्मतोष शांति 'शिव' एवं ब्रह्मानन्द के नाम से कहा है। अब प्रश्न है कौन सुख कहाँ है, उसके साधन क्या हैं, क्या उपाय है। तो संक्षेप में विचार करते हैं।

साधारण सुख

अर्यागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रिया वादिनी च।
वश्यश्च पुत्रो अर्थकारी च विद्या षड् जीव लोकस्य सुखानि राजन्।

(महा भा. उद्योग. प्रजा अ. ३३-८२)

धन प्राप्ति सदा रोग-रहिता प्रिय पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र कार्य-साधिका विद्या में छः मनुष्य लोक के सुख हैं।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्धर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षड् जीव लोकस्य सुखानि राजन्॥
(महा भा. उद्योग. प्रजा. अ. ३३-८६)

आरोग्यता, प्रेम भाव, स्वदेशवास, सत्पुरुषों के साथ मेल मिलाप, स्वाधार आजीविका स्वतंत्र जीवन यात्रा,

अभय निवास। ये छः मनुष्य लोक के सुख हैं। प्रथम छः साधन गृहस्थ सुख के हैं। दूसरे छः साधन समाज सुख तथा राष्ट्र सुख के हैं।

यद्यपि ये उक्त सुख मानव के अभीष्ट हैं पर इन्हीं पर जीवन का साफल्य मानना भूल है क्योंकि इनमें "कुत्रापिकोऽपि सुखी न" (सांख्य. ६-७) कहीं भी कोई सुखी नहीं, पुनः तदपि दुःखश्वलमिति दुःखपक्षेऽपि क्षियन्ते विवेचकाः" (सांख्य. ६-८) वह सुख भी दुःखमिश्रित है अतः विवेकी जन दुःख पक्ष में इसे डालते हैं जैसे योग दर्शन में भी कहा है-- "परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वविवेकिनः" (योग. २-१) परिणाम-ताप संस्कार दुःखों के साथ होने से तथा सत्य गुण रजोगुण तमोगुण के वर्तन विरोध से विवेकी के लिए तो सब दुःख ही है।

सांसारिक सुखों का परिणाम व्यसन वृद्धि का दुःख पुनः उनकी प्राप्ति में दौड़ धूप का कष्ट फिर वही भोग शक्ति के संस्कारों का चक्र, दुःख दायक, साथ में सत्य गुण रजोगुण तमोगुण के अनन्त हेर फेर में उथल पुथल में व्याकुलता दुःख का सहना होता है। और ये सब सुख एवं सुख-साधन एक दिन ये मनुष्य को छोड़ देंगे या मनुष्य से छूट जायेंगे। तथापि शरीर निर्वाहार्थ इनका सेवन करते हुए स्वजीवन चर्चा निम्न होनी चाहिये।

निवृत्ति कर्मणाः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सभिदश्च समुदाचारः श्रेय एवमनुशासनम्॥।
मदिवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्॥

(महा भा. शन्ति. मोक्ष. अ. २८७-१६-१७)

पाप कर्म से निवृत्ति निरन्तर पुण्यशीलता सत्पुरुषों का समागम व्यवहार सब प्राणियों के प्रति मुदु भाव, सरल व्यवहार मधुर वाणी ये कल्याण के साधन हैं।

विशेष सुख

किसी भी ऐन्द्रियिक सुख में व्यसन न आने देना अपितु मन में सन्तोष को बढ़ाना श्रेष्ठ है। जैसे कहा है:-
यच्च काम सुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम्।

सन्तोषसुखस्यैते नाहितः षोडशीं कलाम्। (योग. २४२ व्यास)

संसार में जो काम सुख है और जो उत्तम लोक सुख है वह सन्तोष सुख की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं। वस्तुतः व्यसन इन्द्रियों तथा अन्तःकरण का दोष है, छिद्र है। जब तक इनसे पार न हो जावे आनन्द नहीं मिल सकता। इनका बन्द करना ही श्रेष्ठ है। तभी ईश्वर मन में शान्ति दे सकता है। जैसे वेद में कहा है:-

यन्नेछिद्र चक्षुषां हृदयस्य मनसो वा अतितृष्णम्।

बृहस्पति में तद्व्याप्तु शन्तो भवतु भुवनस्य यस्महिः॥
(यजु० ३६-५)

जो छिद्र मेरे नेत्र का, हृदय का, मन का अत्यन्त खुल गया सर्वज्ञ परमात्मा उसे बन्द कर दे एवं वह विश्व का स्वामी परमात्मा हमारे लिए कल्याणकारी हो।

अति विशेष सुख - अध्यात्मरतिरासीनो निरङ्गो निरमिषः।

आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महा भा. शान्ति. मोक्ष. अ. ३३०-३०)

अपने आत्मा से परमात्मा में रमण करने वाला निःस्पृह निरमिष अपने भरोसे रहने वाला महात्मा सच्चा सुख प्राप्त करता है। उपनिषद् में कहा है।

समाधि निर्धूतमलस्य चेतसां निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

समाधि द्वारा निर्मल किये चित्त के परमात्मा में प्रविष्ट किये हुए जन का जो सुख होता है, वह वाणी से प्रकट नहीं किया जा सकता। वह तो अन्तःकरण से स्वयं ही अनुभव किया जाता है। इसी समाधि सुख की कामना करना वेद में अभीष्ट है।

यदग्ने स्यामहं त्वं वा द्या स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहा शिषः॥। (ऋग्वेद ८-४४-२३)

हे प्रकाश स्वरूप सर्वज्ञ परमात्मन्! ऐसा समय अवश्य आ जावे कि मैं तू हो जाऊं तथा तू मैं हो जा, तो तेरे आदेश और हमारे प्रति तेरे आशीर्वाद सफल हो जावें। समाधि में मेरा तेरा मेल हो जावे। लोहे के गोले और अग्नि के समान। मैं लोहे के गोले के समान अथवा अणु स्वरूप रखता हुआ भी तुझ सा प्रकाशमान हो जाऊं। तेरे प्रकाश से प्रकाशित हो जाऊं। और तूभी लोहे से बाहर अग्नि के समान रह अपना विभुस्वरूप रखता हुआ मेरे में भी प्रकाशित हो। यही भावना है, कामना है, अभ्यर्थना है।

शिव संकल्प- स्वाध्याय, स्वात्मनिरीक्षण, ईश्वर प्रणिधान मानव जीवन का सच्चा सुख है। व्यक्ति में परिवार में समाज में राष्ट्र में समस्त संसार में सुख शान्ति का प्रसार करने का अमोघ औषध साधन उपाय है।

जनज्ञान मासिक के नियम

१. 'जनज्ञान' के पाठक पत्र व्यवहार करते समय अपनी सदस्य संख्या अवश्य लिखें। (सदस्य संख्या 'जनज्ञान' के रैपर पर लिखे पते पर अंकित रहती है।)
२. 'जनज्ञान' प्रतिमास पांच छै तारीख को भेज दिया जाता है।
३. मास के अन्त तक 'जनज्ञान' न मिले तो शिकायत आने पर दोबारा भेज दिया जाता है।
४. शुल्क समाप्ति की सूचना प्रत्येक सदस्य को एक मास पहले भेज दी जाती है। पत्र के साथ मनीआर्डर फार्म और पोस्टकार्ड संलग्न रहता है।
५. कृपया आगामी वर्ष के लिए नया शुल्क मनीआर्डर द्वारा तुरन्त भेज दिया करें। मनीआर्डर न मिलने पर अगला अंक वार्षिक शुल्क की वी. पी. द्वारा भेजा जायेगा। वी. पी. में दस रुपये का डाक व्यय अतिरिक्त व्यर्थ होता है। जिसका लाभ न तो सदस्यों को होता है और न ही संस्थान को।
६. अतः सदस्यों से निवेदन है वे (हमारे भेजे पोस्टकार्ड पर) उत्तर देने की कृपा अवश्य किया करें।
७. जनज्ञान का विशेषांक न मिलने पर दोबारा रजिस्ट्री से ही भेजा जायेगा। इसके लिए न मिलने की शिकायत के साथ दोबारा भेजने हेतु छै रुपये अवश्य भेजें।

-प्रबन्धक

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द

-‘वेद भक्त’

सन् १८५६ में वीर प्रसविनी पंजाब धरा के जालंधर जिले के एक ग्राम में पुलिस विभाग के उच्चाधिकारी श्री नानकचन्द के कुलदीपक के रूप में जन्म लिया एक बालक ने। माता पिता ने पंडित पुरोहितों के परमशानुसार उसका नाम मुन्शीराम रख दिया।

बालक मुन्शीराम ने वर्णमाला का ज्ञान तलवन की पाठशाला में ही प्राप्त किया। प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर उन्होंने जालंधर नगर से मिडिल की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। इन्हीं दिनों श्री नानक चन्द का स्थानान्तरण नगर कोतवाल के रूप में बरेली (उत्तर प्रदेश) हो गया। श्री नानकचन्द जी ने अपने सुपुत्र को उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु काशी भेज दिया।

काशी में विद्याध्ययन करते हुए आपकी धर्म भावना भी जाग्रत हो उठी और आप प्रतिदिन विश्वनाथ मन्दिर में दर्शनार्थ जाने लगे। किन्तु इस मंदिर में घटित एक घटना ने बालक मुन्शीराम के जीवन में एक प्रबल तूफान ला दिया। एक दिन जब श्री मुन्शीराम प्रतिमा के दर्शनार्थ विश्वनाथ मन्दिर में पहुंचे तो पुजारी ने उन्हें रोक दिया और बोला “अभी रीवां की महारानी देव दर्शन कर रही हैं। तुम अभी ठहर जाओ महारानी के देवालय के बाहर आने के बाद ही तुम्हें भगवान के दर्शनों की अनुमति मिल सकेगी।”

पुजारी के इन शब्दों ने मुन्शीराम के विचारशील मन के महासागर में एक प्रबल प्रभंजन का उद्वेलन कर दिया। वह बिना दर्शन किए ही अपने स्थान पर लौट आए। रात हुई। वे शैया पर शयनार्थ लेट गए किन्तु आज तो नींद ही उड़ गई थी। सारी रात वे यही सोचते रहे जिस भगवान के दरबार में धनी निर्यन के मध्य भेद की दीवार खड़ी हो वह दीन बन्धु, दीनानाथ और दया का सागर कैसे हो सकता है? बस उसी दिन से पत्थर के भगवान पर से उनकी श्रद्धा उठ गई।

आस्था के स्थान पर अनास्था ने उनके मन पर अधिकार जमा लिया। अब व्यसनों ने उन्हें आ घेरा। जूआ उनके जीवन में जड़ जमा गया तो सुरापान भी उन्हें भा गया। कुछ ही दिनों के उपरान्त वे काशी से अपने पिता जी के पास बरेली आ गए।

बरेली में श्री मुन्शीराम के जीवन को एक नया मोड़ और मिला। वहां १४ श्रावण संवत् १९३७ को महर्षि दयानन्द का शुभागमन हुआ। बेगम बाग स्थित कोठी में देव दयानन्द के प्रवचनों का क्रम आरम्भ हुआ। सत्य वैदिक ज्ञान की गंगा प्रवाहित होने लगी। मुन्शीराम के पिता श्री नानकचन्द ने भी एक दिन स्वामी दयानन्द का युग उद्बोधक आह्वान सुना। उन्होंने अपने निवास स्थान पर लौट कर मुन्शीराम को भी स्वामी जी का प्रवचन सुनने का निर्देश दिया।

जिज्ञासु मुन्शीराम ने स्वामी दयानन्द के ब्रह्म तेज से उदीप्त मुखमंडल को निहारा तो प्रभावित हुए बिना न रह पाए, वे बड़े मनायोग सहित प्रवचन सुनते रहे। प्रवचन समाप्त हुआ तो जिज्ञासु मुन्शीराम ने परमात्मा और उसके अस्तित्व के संबंध में कई प्रश्न देव दयानन्द के पूछ डाले। स्वामी जी के तर्क सम्मत उत्तरों से मुन्शीराम की जिज्ञासा का शमन तो हो रहा था, किन्तु अभी भी एक कसक उनके मन में की थी। अतएव वह बोल उठे “स्वामी जी आपने मुझे अभी तक ईश्वर के अस्तित्व का तो भान नहीं कराया?”

इस प्रश्न को सुनकर स्वामी जी के मुखमंडल पर हास्य की एक रेखा सी उभरी और वे इस प्रश्न का उत्तर देना टाल गए। मुन्शीराम का स्वामी जी के प्रवचनों को सुनने के लिए प्रतिदिन आगमन का क्रम आरम्भ हो गया। अनेक बार उन्होंने अपना उपरोक्त प्रश्न ही पुनः दोहराया। एक दिन जब मुन्शीराम ने अपने प्रश्न का उत्तर पाने की हठ ही ठान ली तो स्वामीजी बोले “भाई! परमेश्वर के अस्तित्व का भान कराना मेरे हाथ की बात नहीं। किन्तु जब समय आएगा तो

परमात्मा तुम्हें स्वयं ही अपने अस्तित्व का भान करा देंगे।”

युग पुरुष दयानन्द के संपर्क में आते रहने के फलस्वरूप मुन्शीराम के मानस पटल पर अंधकार के बादल अब छंटने लगे। दुर्व्यसन, मांस, मंदिरा वं घूतक्रीड़ा के प्रति उनके मन में अरुचि और घृणा उभरने लगी थी।

अनास्था से आस्था और शंका से स्वधर्म में विश्वास का अंकुर मुन्शीराम जी के हृदय में बरेली में ही पनप उठा था। बाद में मुख्तारी की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर मुन्शीराम जी सपरिवार जालंधर आ गए।

यहीं उनका परिचय आर्य समाज के महान् प्रचारक पं. गुरुदत्त विद्यार्थी से हुआ। उन्होंने ही आपको सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका एवम् वेद भाष्य आदि ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के नियमित एवम् गहन अध्ययन हेतु प्रेरित किया। इन ग्रन्थों के अध्ययन एवम् मनन से आपकी जीवनधारा ही बदल गयी। जालंधर में मुन्शीराम जी जहां मुख्तार के रूप में अपना वयवसाय चला रहे थे, वहां आर्य समाज से भी अपना संपर्क बढ़ा रहे थे।

मुन्शीराम जी ने सत्यार्थप्रकाश में निहित स्वामी जी की राष्ट्रीय भावनाओं को पहचाना और उनके विचारशील मस्तिष्क में इस सत्य का आरोपण हो गया कि राष्ट्र के कल्याण का एकमात्र मार्ग है स्वामी दयानन्द प्रणीत समाज सुधारों का क्रियान्वयन।

दृढ़ संकल्प ग्रहण कर मुन्शीराम कर्मक्षेत्र में कूद पड़े। समाज की तन्त्रा झकझोर कर कर्तव्य और स्थिति का भान कराना ही उनका लक्ष्य था।

समग्र आर्य जाति को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की दृष्टि से मुन्शीराम जी ने जन्मजात जाति भेद को त्यागने का हिन्दू समाज से आह्वान किया। प्रचंड जन विरोध की उपेक्षा कर उन्होंने अपनी पुत्री वेदकुमारी को १६ अक्टूबर १८८८ ई. को अंग्रेजों द्वारा संचालित कन्या पाठशाला में भर्ती करा दिया। किन्तु वेद कुमारी को एक दिन जब उन्होंने “ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल” यह वाक्य गुनगुनाते

हुए सुना तो उन्होंने समझ लिया कि इस प्रकार तो अंग्रेज ईसाईयों के स्कूल में आर्यकन्यायें भ्रष्ट हो जायेंगी। इस स्थिति से निपटने के लिए उन्होंने आर्य कन्या पाठशाला की स्थापना का निश्चय कर लिया।

इसी समय आर्यसमाज के कर्मठ सेनानी लाला देवराज उनसे आ मिले। दोनों ने मिलकर प्रयास किया और एक आर्य-कन्यापाठशाला की स्थापना कर दी जो आज भी जालंधर में कन्या-महाविद्यालय के नाम से विद्यमान है।

तदुपरांत वैदिक पद्धति से स्त्री शिक्षा दिये जाने की दिशा में आपने एक और प्रयास किया और देहरादून में कन्या-गुरुकुल की स्थापना की।

पर्दाप्रथा का भी आपने विरोध किया और सर्वप्रथम अपनी पत्नी शिवदेवी से ही पर्दा छुड़वाया। साथ ही शिवदेवी को वे वेद आदि धर्मग्रंथों की शिक्षा भी देने लगे और स्वाध्याय भी कराने लगे।

राष्ट्रीय विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाने के लिये उर्दू में प्रकाशित होने वाले आर्यसमाज के मुख पत्र ‘सद्धर्म-प्रचारक’ को आपने राष्ट्रभाषा हिंदी में प्रकाशित करना आरम्भ करके भी अपनी दूर-दर्शिता प्रदर्शित की।

जातीय-एकता के लिये मुन्शीराम जी ने अपनी पुत्री अमृतकला और दोनों पुत्रों, इन्द्र विद्यावाचस्पति और पं. हरिश्चन्द्र विद्यालंकार का विवाह भी जाति-बंधन तोड़कर किया।

सन् १८९६ से वकालत छोड़कर मुन्शीराम जी तन-मन-धन से आर्य जाति, आर्यसमाज और आर्यावर्त की सेवा में ही जुट गये। इसी बीच १८८९ में उनकी धर्मपत्नी शिवदेवी ने भी उनसे चिर विदाई ले ली।

इन्हीं दिनों अपने पत्र ‘सद्धर्म-प्रचारक’ में उन्होंने गुरुकुल की स्थापना पर जोर देते हुये अपनी योजना प्रत्येक आर्य-जन तक पहुँचाने का भी प्रयास किया।

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के समक्ष भी यह योजना विचारार्थ प्रस्तुत की गई। २६ नवम्बर १८९७ को आर्य

दिया। अंततः सरकार को झुकना पड़ा और अपना घृणित इरादा त्याग देना पड़ा।

ऐबटाबाद (सीमा प्रांत) आर्यसमाज के प्रधान पं. धनीराम के खिलाफ सरकार ने राजद्रोह का मुकदमा चलाया तो स्वामी जी ने श्री धनीराम की पैरवी के लिये आर्यसमाजी वकीलों की पूरी सेना ही खड़ी कर दी और अंग्रेजों के मंसूबों को धूलधूसरित कर दिया।

वस्तुतः राष्ट्रीयता का जो बीज आर्यसमाज में महर्षि दयानन्द ने बोया था उसे स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने अथक परिश्रम से सींच कर पुष्पित-पल्लवित किया।

स्वामी जी के क्रांतिकारी व्यक्तित्व का ही परिणाम था जिसे देखकर अंग्रेजों ने आर्यसमाज को एक क्रांतिकारी संगठन के रूप में स्वीकार किया। और तो और उन दिनों जो भी व्यक्ति अंग्रेजी सरकार के खिलाफ विद्रोह करता उसे ही अंग्रेज आर्यसमाजी कह देते थे। आर्यसमाज का अर्थ ही अंग्रेजों ने सत्ता-विद्रोही लगा दिया था।

एक अंग्रेज लेखक वैलेण्टाइल शिरोल ने अपनी पुस्तक 'अनरैस्ट इन इंडिया' में आर्यसमाज के स्वरूप की व्याख्या कुछ इस तरह से की, 'जहां-जहां आर्यसमाज का जोर है, वहां राजद्रोह प्रबल है।'

जब भाई परमानन्द और लाला लाजपराय जैसे महान् क्रांतिकारी बर्मा-निर्वासन के कई वर्ष बाद लाहौर लौटे तो उनका सार्वजनिक अभिनंदन करने का साहस भी किसी में नहीं हुआ। आखिर यह कार्य भी स्वामी जी ने संपन्न किया और लाहौर में उनका सम्मानपूर्वक जुलूस निकाला।

आर्यसमाज पर बड़ी-बड़ी विपत्तियां आयीं, अंग्रेजों ने इस पर प्रबल प्रहार किए। पर स्वामी श्रद्धानन्द अत्याचारों की इस आंधी में भी अडिग चट्टान की तरह खड़े रहे। हिम्मत हारना और धीरज खोना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था।

दिल्ली में सन् १९१८-१९ में असहयोग आंदोलन के समस्त भारत में संचालन के लिए जो समिति बनी उसके

प्रधान महात्मा गांधी और उप-प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द थे। बाद में गांधी जी से सैद्धांतिक मतभेद के कारण स्वामी जी ने समिति के उप-प्रधान पद से इस्तीफा दे दिया था।

किन्तु इसके बावजूद हर राष्ट्रीय आंदोलन में भारत की जनता का नेतृत्व करने के लिए वे सदा अग्रणी रहे और युवकों को इसके लिए प्रेरित करते रहे।

७ मार्च १९१९ को रौलट-ऐक्ट के विरुद्ध जब वे एक जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे तो चांदनी चौक घंटाघर में अंग्रेज भक्त गोरखा सिपाहियों ने उन्हें रोककर हर तरह से डराया धमकाया और उनके सीने पर बन्दूक की संगीने भी टिका दी।

किन्तु निर्भीकता की मूर्ति श्रद्धानन्द किसी से रुकने और दबने वाले तो थे नहीं, अपनी छाती का वस्त्र हटाकर उन्होंने सिपाहियों को ललकार कर कहा, 'लो, चलाओ गोली।'

यह स्वामी जी के व्यक्तित्व की दृढ़ता ही थी कि बिना किसी अप्रिय घटना के उन्होंने ४० हजार लोगों की भीड़ को नियन्त्रित किया, वरन् उनके एक इशारे पर दिल्ली में दूसरे विद्रोह का दृश्य उपस्थित होते देर न लगती।

अमृतसर में 'गुरु का बाग' आंदोलन के जोर पकड़ने का समाचार सुनकर स्वामी जी १० दिसम्बर १९२२ को अमृतसर पहुंचे।

आंदोलनकारियों के नेताओं से मिलकर उन्होंने दिल्ली की ओर से सौ आंदोलनकारी और पांच हजार रुपये की सहायता का वचन भी दिया। किन्तु उसी दिन अंग्रेजों ने स्वामी जी को गिरफ्तार कर लिया।

५ अक्टूबर १९२३ तक मुकदमा चलाने के बाद अंततः धारा ११७ के अंतर्गत एक वर्ष तथा धारा १४३ के तहत ४ माह कैद की सजा स्वामी जी को सुना दी गई।

किन्तु २६ दिसम्बर को स्वामी जी सहसा रिहा कर दिए गए। २३ जुलाई १९२३ को स्वामी जी ने कांग्रेस से त्याग

पत्र दे दिया। कांग्रेस के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. मोतीलाल नेहरू को अपना इस्तीफा भेजते हुए उन्होंने लिखा--'इस इस्तीफे का यह अर्थ नहीं कि मैं कर्म-क्षेत्र से संन्यास ले रहा हूँ। अपनी योग्यता, सीमा और सामर्थ्य के अनुसार मैं अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक देश-सेवा के कार्यों में पूरी लगन व निष्ठा से प्रवृत्त रहूँगा।' तदुपरांत आपने हिन्दू संगठन आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण किया।

हरिजनोद्धार पर आपने 'मुक्ति सोपान' नाम से एक पुस्तिका लिखकर उसे प्रकाशित कर मुफ्त बंटवाई। अंग्रेजी में इस पुस्तिका का शीर्षक था, हिन्दू संगठन सेवियर आफ्नी डाइंग रेस।

सन् १९२३ में ही आपने आगरा में एक शुद्धि सभा की भी स्थापना की।

यद्यपि स्वामी जी की अवस्था ७० वर्ष की हो चली थी तथापि अपने समस्त कार्यों को वे जिस उत्साह से करते थे, उसे देखकर तो युवक स्तम्भित रह जाते।

सन् १९२६ में असगरी बेगम नामक एक मुसलमान महिला करांची से दिल्ली आई। उसके साथ उसके दो बच्चे

और भतीजा भी था। आर्यसमाज में आकर उसने शुद्धि की पेशकश की तो स्वामी जी ने उसका शुद्धिकरण संपन्न करा दिया। इस महिला का नाम शांतिदेवी रखकर उन्होंने उसे 'वनिता आश्रम' भेज दिया।

कुछ काल बाद उस स्त्री के पति और पिता उसे ढूंढते हुए दिल्ली आए। उन्होंने आर्यसमाज और स्वामी श्रद्धानन्द पर उस स्त्री को बहका कर धर्म भ्रष्ट करने का आरोप लगाते हुए दिल्ली में अभियोग करा दिया।

पर सांच को आंच क्या?

४ दिसम्बर १९२६ को स्वामी जी तथा उनके साथियों को, ६ मास तक मुकदमा चलने के बाद, अदालत ने ससम्मान बरी कर दिया।

२३ दिसम्बर १९२६ की दोपहर को स्वामी जी की प्रकृति ठीक न होने से वे अपने कक्ष में आराम कर रहे थे जब अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध स्वामी जी से मिलने के बहाने अंदर आया और गोली चलाकर स्वामी जी की हत्या कर दी। इस तरह स्वामी जी की दिव्य, प्रेरणामयी, राष्ट्रकल्याणकारी जीवन लीला समाप्त हुई। □ □

जीवन फूल

नर जीवन वह फूल है जिसकी सुगंध देवों को भी लुभाती है।

यह दिव्य स्तर तक पहंचने की सीढ़ी कहलाती है।

हमने अपना अमूल्य समय अधिकतर पशुता में बिताया है

हमारे पास जो हीरा है, शाश्वत है, उसे कहां खोज पाया है?

अंधी महत्वाकांक्षाओं से जीवन को भर डाला है।

सपने के राजा बनकर स्वयं को स्वयं ही छल डाला है।।

अज्ञान आलस्य अकर्मण्यता में जीवन बीता जाता है।

घोर निद्रा तंद्रा बेहोशी में ये सपना बुना जाता है।।

सपनों की कौन कहे हकीकत भी सपना लगता है।

घंटों की कौन कटे, हर पल रंग बदलते रहता है।।

इस पल जीवी जीवन का हमने क्या अर्थ निकाला है।

खाओं पीओ मौज करो कल कब होने वाला है?

नर जीवन वह फूल है, जिसकी सुगंध में हो ओतप्रोत।

उससे तू नाता जोड़ दे जो सबका है आदि श्रोत।।

महेश प्रसाद जोशी

देवतास्वरूप भाई परमानन्द

-दिव्या श्री

नवम सिख गुरु तेगबहादुर के भी एक दिन पूर्व अर्थात् १६ दिसम्बर १६७५ को भारत की ऐतिहासिक नगरी दिल्ली के ऐतिहासिक फव्वारे पर आरे से शीश चिरवाकर स्वधर्म की रक्षा का महान् संकल्प पूर्ण कर हुतात्मा बने भाई मतिदास के कुल में ही लगभग दो शताब्दी के उपरान्त अर्थात् १८७६ में, जेहलम जिले में एक महान् पुरुष ने जन्म ग्रहण किया था। वह महापुरुष थे भाई परमानन्द।

अपने स्वनामधन्य पूर्वजों के बलिदान का तमगा मात्र छाती पर चिपटा कर स्वयं के बड़प्पन की डोंडी पीटने वाले नेता नहीं थे भाई परमानन्द, अपितु श्रद्धा निष्ठा और निर्भीकता भी उन्हें अपनी वंश परम्परा से ही प्राप्त हुई थी। वीरता का प्रदर्शन कर फांसी की रेशमी डोरी को चूम लेना तो महानता का घोटक है ही, किन्तु आजीवन अपनों और परायों का वैर विरोध सहन करते हुए भी अपने जीवन में कभी निराशा को क्षण मात्र के लिए भी प्रभावी न होने देना और भी अधिक महानता है। भाई जी का समग्र जीवन इसी महानता की ज्वलंत गाथा है।

किशोरावस्था में ही, जब भाई परमानन्द चकवाल (जिला जेहलम) में मिडिल स्कूल के छात्र थे, आप आर्य समाज के सम्पर्क में आये। वहीं आपने सारा जीवन आर्य जाति की सेवा में लगा देने का संकल्प भी ग्रहण कर लिया।

यही कारण था कि एम. ए. की उपाधि प्राप्त कर आपने ऐश्वर्य और सुख सुविधाओं का जीवन यापन करने की दृष्टि से अंग्रेजी सरकार की नौकरियों करने के प्रलोभन को अपने मन से सर्वथा के लिए दूर हटा दिया। उसके स्थान पर आपने केवल ७५ रूपया मासिक के गुजारे भत्ते पर डी. ए. बी. कालेज की आजीवन सदस्यता ग्रहण करने को ही वरेण्य माना।

उन दिनों आर्य समाज पंजाब में राष्ट्रीय जागृति का अग्रदूत था और डी. ए. बी. कालेज (जो सरकार से एक दमड़ी की भी सहायता न लेते हुए बनाया गया था) वह वायुमंडल प्रस्तुत कर रहा था जिसमें आत्म निर्भरता को प्रस्फुरण प्राप्त होता है। भाई परमानन्द और लाला लाजपतराय के सम्मिलित श्रम का ही यह प्रतिफल था कि यह कालेज एक ऐसा केन्द्र बन गया जिसमें प्रवाहित होने वाली समीर शुष्क हृदय में भी राष्ट्रभक्ति और सामाजिक सुधार की भावनाओं को अंकुरित किया करती थी।

परन्तु उन्हीं दिनों अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों की ओर से एक मिशनरी वहां भेजने का अनुरोध प्राप्त हुआ। इससे पूर्व के तीन वर्षों में पंजाब की प्रायः प्रत्येक आर्य समाज में भाई परमानन्द की अमरवाणी गूंज चुकी थी। उनके अन्तस्तल में धधक रही आर्य जाति को जगाने की प्रचण्ड अग्नि से उस समय के सभी प्रमुख आर्यजन अवगत थे अतः महात्मा हंसराज ने भाई जी को ही विदेशों में आर्य समाज के प्रचार और प्रसार के लिए सर्वाधिक योग्य प्रचारक समझा। भाई जी अफ्रीकी देशों में आर्य समाज और वैदिक धर्म के प्रचारार्थ प्रस्थान कर गए और इस प्रकार उनके जीवन को एक नाटकीय मोड़ प्राप्त हो गया।

वैदिक मिशनरी के रूप में अपने प्रथम अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधी जी से भी आपकी भेंट हो गई और आप जोहान्सबर्ग में एक मास तक उन्हीं के पास ठहरे। ये दोनों महामानव एक दूसरे की ध्येय निष्ठा से प्रभावित हुए बिना न रह पाए। जब राजनैतिक चिंतन के अन्तर ने इन दोनों महापुरुषों के जीवन और एक दूसरे के विचारों में काफी बड़ी दूरी ला दी तब भी उनका मैत्री भाव पूर्ववत् ही बना रहा।

गांधी जी ने बाद में भाई परमानन्द के संबंध अपने

पत्र 'यंग इंडिया' में लिखा तो आपने ही उनका परिचय महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त एवं क्रांतिकारियों के प्रमुख मार्गदर्शक श्याम जी कृष्ण वर्मा से भी कराया। बताया जाता है कि श्री वर्मा ने ही भाई जी को बम बनाने की तरकीब से संबंधित एक कागज दिया था, जो उनके थैले से बरामद होने के कारण उनके विरुद्ध प्रथम मामला दायर होने का आधार बना।

भाई जी को राष्ट्रभक्ति के पावन अपराध में मृत्युदंड सुनाया गया था, किन्तु बाद में उनकी सजा आजन्म कारावास में बदल गई और इस महान् राष्ट्रवादी नेता को अंडमान की कालकोठरी में अपनी जवानी गलाने पर बाध्य होना पड़ा।

उन्हीं दिनों सरकारी प्रकोप से भयभीत कालेज के अधिकारियों ने भाई जी की आजीवन सदस्यता भी समाप्त कर दी और उनके परिवार ने उन दिनों जो अवर्णनीय संतनाएं झेलीं उनका रोमांचक वर्णन ख्यातिनामा भारतभक्त श्री सी. एफ. एन्ड्रूज ने किया है। उन आपदा के दिनों में भाई जी की धर्मपत्नी के पास वे अनेकों मानपत्र और प्रशंसापत्र ही अपने पति की एकमात्र धरोहर थे जो भाई परमानन्द को अफ्रीका के विभिन्न देशों में वहां के प्रवासी भारतीयों द्वारा समर्पित किए गए थे।

भाई जी को अंडमान की कालकोठरियों में वर्षों तक यमयातनाएं सहन करनी पड़ीं। भाई जी ने महायुद्ध की समाप्ति के बाद स्वजीवन को स्वेच्छया समर्पित करने के लिए अन्नजल का भी त्याग कर दिया था। किन्तु एक सप्ताह के बाद ही उन्हें बलात् भोजन दिया जाने लगा। इसी ढंग से दो मास बीते और उनका वजन ८२ पाउंड घट गया। दीनबंधु एन्ड्रूज भाई जी को अंडमान से मुक्ति दिलाने हेतु प्रयत्नशील थे और अन्ततः वे अंडमान की कालकोठरी से रिहा कर दिए गए। उनकी रिहाई पर उन्हें विदाई देने के लिए जो लोग उपस्थित थे उन सभी के नेत्र सजल हो उठे थे।

इस प्रकार भाई जी अपनी कष्टों से जर्जर हुई क्षीण काया लिये १९१६ में पुनः स्वदेश आ गए। किन्तु काले पानी

की कठोर यातनाएं भी स्वराष्ट्र को स्वतन्त्र देखने की उनकी दुर्दम्य आकांक्षा को पराभूत नहीं कर पाई थीं। अतः उन्होंने स्वधर्म और स्वदेश सेवा के अपने व्रत के परिपालनार्थ एक नवीन योजना बनाई। वे अपने व्यवसाय में एक समय के सहयोगी सरदार हुकमसिंह के पास हरिद्वार पहुंचे और उनके समक्ष अपनी योजना इन शब्दों में प्रस्तुत की, "सरदार जी, ऐसा प्रतीत होता है कि इस जीवन में तो मुझे यह सरकार स्वदेश की सेवा का कार्य नहीं करने देगी। अतः आप मेरे साथ गंगोत्री यमुनोत्री की यात्रा के बहाने चलिए। बाद में आप यह समाचार भिजवा देना कि पर्वतीय भाग में भाई परमानन्द का निधन हो गया। फिर मैं वापस लौट कर किसी अन्य नाम से पुनः देश सेवा का कार्य आरम्भ कर दूंगा।"

जिस नाम के लिए आज के नेता मारे-मारे फिरते हैं, उसे भी भुला और भुलवाकर भाई जी के राष्ट्र कार्य के लिए जीवन वारने की प्रबल आकांक्षा का ही परिचायक थी उनकी यह योजना।

भाई जी ने स्वदेश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने हेतु हिन्दू रियासतों का सहयोग पाने और विशेषतः नेपाल के शासकों को इस दिशा में सक्रिय बनाने की दृष्टि से भी कई ठोस पग उठाए थे।

भाई परमानन्द ने देव दयानन्द के महान् विचारों से प्रेरणा प्राप्त की थी। उनके जीवन का आदर्श वह महान् कर्मयोगी ही था जिसने सत्य की पूजा हेतु सुत्ता और सम्मान को सदैव ठुकराया था।

जब गांधी जी ने विदेशी शिक्षा के बहिष्कार का आन्दोलन छेड़ा तो लाहौर में भी नेशनल कालेज की स्थापना हुई। स्वयं गांधी जी, लाला लाजपतराय एवं प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अनुरोध पर भाई परमानन्द ने उसका उपकुलपति, शिक्षा मंडल का अध्यक्ष व इतिहास का प्राध्यापक पद स्वीकार कर लिया। इसी कालेज में उन्होंने अमर हुतात्मा सरदार भगतसिंह के हृदय में देश भक्ति का बीजारोपण किया।

किन्तु जब मुसलमानों को कांग्रेस में लाने की आकांक्षा

से महात्मा गांधी ने खिलाफत के साम्प्रदायिक उद्देश्य से स्वयं को जोड़ दिया तो भाई जी की आत्मा विद्रोह कर उठी। उन्होंने समझ लिया कि वर्ग विशेष के तुष्टीकरण का यह मार्ग राष्ट्रीयता के आन्दोलन को गतिमान करने के स्थान पर क्षतिग्रस्त ही करेगा। अतएव पद, सम्मान और लोकेषणा सभी से विमुख होकर उन्होंने गांधी जी से अपना मतभेद स्पष्टतः व्यक्त किया। वे अभी तक ब्रिटिश सरकार के ही कोपभाजन थे अब उन्होंने उस समय बह रही गांधीवाद की प्रचण्ड आंधी को भी सहन करना सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे हिन्दू संगठन, शुद्धि और समाज सुधार कार्यक्रम को नवीन गति प्रदान करने के लिए हिन्दू महासभा के मंच पर आ गए। उन्हें केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य बनने का अवसर मिला तो वहां भी वह निर्भीकतापूर्वक सत्य राष्ट्रीयता का ही उद्घोष करते रहे। उन्होंने साम्प्रदायिकता का आरोप सहकर भी समय के प्रवाह में बह चलने और सस्ती ख्याति की प्राप्ति को अपना जीवन लक्ष्य न बनने दिया।

गांधी जी ने जब इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि 'हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना स्वराज्य की प्राप्ति संभव नहीं' तो इस महान् देश भक्त ने अपनी अडिग मान्यता के आधार पर यह उद्घोष किया कि हिन्दुओं का प्रबल संगठन ही स्वराज्य प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है। क्योंकि यदि हिन्दू समाज संगठित हुआ तो अन्य सम्प्रदाय के लोग भी स्वाभाविक रूप से ही स्वराज्य के अनुष्ठान में सहयोगी बनेंगे। किन्तु यदि उनके तुष्टीकरण की प्रक्रिया जारी रही तो उनकी मांगों का सिलसिला बढ़ते-बढ़ते पृथक् होमलैंड की मांग तक पहुंचेगा और हिन्दू संगठित न होने से उनका पृथक् होमलैंड बनने से रोक न सकेगा।'

वे हिन्दू महासभा के आन्दोलन में जी-जान से जुट गए किन्तु हिन्दू समाज के संगठित न हो पाने के कारण इस दूरदर्शी नेता की आशंका ही अन्ततः सही सिद्ध हुई। १९३२ में जब कांग्रेस ने साम्प्रदायिक एवार्ड को स्वीकार किया तो भाई जी हिन्दू महासभा के लिए पूर्णतः समर्पित हो गए। १९३४ में वे हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी बने और फिर जीवन की अन्तिम घड़ी तक वे इसी संस्था के साथ जुड़े रहे।

भारत के विभाजन की आशंका उन्होंने १९४५ में ही व्यक्त कर दी थी। यद्यपि गांधी जी यह घोषणा कर रहे थे कि पाकिस्तान उनकी लाश पर बनेगा तो जवाहर लाल पाकिस्तान की कल्पना को मूर्खतापूर्ण बता रहे थे। किन्तु उसी वर्ष ७ अक्टूबर को भाई परमानन्द ने लिखा था:--

“एक ओर श्री जवाहर लाल नेहरू यह घोषणा कर रहे हैं कि वह तथा उनके मित्र देश का विभाजन कदापि नहीं होने देंगे। किन्तु दूसरी ओर उसी सांस में यह भी कहा जा रहा है कि यदि मुसलमान भारत में नहीं रहना चाहते तो उन्हें रहने के लिए बाध्य भी नहीं किया जा सकता। अतः मैं यहां और अब यह कहने की अनुमति चाहूंगा कि वह समय निकट आ रहा है कि जब इन सब बातों के बावजूद यही नेता पाकिस्तान के निर्माण की स्वीकृति प्रदान कर देंगे।

इतिहास ने भाई जी की भविष्यवाणी को ही अन्ततः सिद्ध कर दिया। काश! ऐसा न होता।

भारत विभाजन के दुःख को यह महान् नेता न सह पाया १८ दिसम्बर १९४७ को उस महान् नेता ने जालंधर में अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी।

प्रातः स्मरणीय देवता स्वरूपभाई परमानन्द उस महान् देश के उन गिने चुने महापुरुषों में से एक थे जिन्होंने एक उच्चकोटि के संन्यासी के तुल्य अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सूर्य के तुल्य दूसरों को सही मार्ग दर्शन दिया। स्वयं धार्मिक जीवन की उपलब्धि कर हजारों को सन्मार्ग पर चलाया। परोपकार ही उनका जीवन व्रत था और आर्यजाति व स्वदेश की हितकामना ही एक मात्र साधना।

नेटाल में शिवानंद स्मृति यज्ञ

नेटाल में आर्य समाज के पावन संदेश का जन-जन में फैलाने हेतु जीवन समर्पित कर देने वाले महान् आर्य नेता श्री शिवानंद की पुण्य तिथि पर ग्रेटउन में १५ नवम्बर को एक विशाल सभा आयोजित हुई।

सभा में आर्य नर-नारी भारी संख्या में उपस्थित थे। इस अवसर पर यज्ञ और हवन भी संपन्न हुआ। * * *

वे कहते थे कि समय कम है

-धर्मपाल शर्मा

“हिन्दू रक्षा समिति” की स्थापना के बाद एक दिन मैंने उनसे पूछा कि क्या आप नहीं समझते कि लड़ाई विषम है? हिन्दू विरोधी शक्तियों के पास धन, बल, सत्ता, विदेशी सहयोग सभी कुछ तो है। क्या साधन हीनता और हिन्दू नेतृत्व के बिखरे रहने पर कोरी भावनाओं से लड़ाई जीती जा सकेगी?”

वे बोले “कौन कहता है कि हिन्दू अशक्त, साधनहीन, तेजहीन है, उसे केवल आवाज देने की जरूरत है, उसमें आज भी ऐसी शौर्य परम्परा है कि दुनिया की सारी शक्तियों के विरोध के बावजूद वह विजयी होगा।” और सचमुच उन्होंने थोड़े से ही समय में प्रखर आत्मविश्वास, जूझारू कर्मशक्ति, तेजस्वी संकल्प के बल पर “हिन्दू रक्षा समिति” के रूप में एक देशव्यापी संगठन खड़ा कर दिया। एक कदम के पीछे हजारों कदम चल पड़े। हिन्दू रक्षा समिति के बड़े बड़े पोस्टरों, विज्ञापनों, समाचारों और प्रचार साहित्य की चर्चा सुन-देखकर एक दिन एक मित्र ने पूछा, “इतनी तेजी से कार्य विस्तार के पीछे किया कारण दीखता है आपको? क्या कोई विदेशी सहायता थी?” मैंने कहा, एक ही बात देख सका हूँ मैं और वह साथ ले चलने वाले लोगों के प्रति उनकी सहजता। नेता का बड़प्पन नहीं बल्कि मित्र की सहजता ही हजारों लोगों के हृदयों को स्पंदित करती है। दुर्भाग्य यही है कि श्रेष्ठ और बड़े कार्यों में जुटे लोग नेतृत्व के अहं से ग्रस्त हो जाते हैं जबकि इतिहास साक्षी है कि राम और कृष्ण के युगान्तर परिवर्तनकारी कार्य से लेकर स्वातन्त्र्य आंदोलन के कर्मक्षेत्र तक वही नेतृत्व सफल रहा है जो नेतृत्व के अहं से मुक्त रहकर समाज से मित्रवत् नाता जोड़ सका।

उस दिन की घटना मुझे स्मरण आती है तो लगता है कि वे वास्तव में ही जन्मी में थे, शायद इस बात का उन्हें आभास भी था। वे अपनी बेटी को डांट रहे थे “कितनी शिथिल हो, तुमसे दिन भर में इतना भी काम नहीं हुआ? क्या जिंदगी में आगे बढ़ोगी !” निकटता का अधिकार जताते हुए मैंने कहा, “काफी तो कर डाला है आप यह क्यों भूल जाते हैं कि सब लोग आप जितने ही कार्य क्षम धर्मी हो सकते?” आप यह आज्ञा क्यों करते हैं कि सब लोग आप जितनी ही कर्मठता, बेचैनी और कार्यक्षमता हर व्यक्ति में होगी?” वे मेरी बात पर हंस पड़े और बात को टालने की गरज से बोले “तारीफ और वकालत करके आप दिमाग

बिगाड़ रहे हैं बेटी का।” फिर उन्होंने बड़े स्नेह से उसे गले लगाते हुए कहा, “मेरी बिटिया बड़ी अच्छी है, बड़ी कर्मठ भी, लेकिन आप जानते ही हैं, समय थोड़ा है, हम सबको गति तेज तो करनी ही चाहिए।” वेदभिक्षु: ६० मील की रफ्तार से चलते थे जिन्दगी के सफर में, और यही चाहते थे कि शेष सहकर्मी, मित्र-बंधु और लक्ष्य के साथी भी इसी रफ्तार से उनके साथ चलें। वे जानते थे कि सबके लिए उनकी रफ्तार से चलना संभव नहीं पर उनकी व्यग्रता, बेचैनी और लक्ष्य के प्रति छटपटाहट उन्हें तेज चलने और सबको तेज चलने का आग्रह करने के लिए विवश करती थी।

वह उत्सवधर्मी दृष्टि

मैंने जब भी घर में प्रवेश किया, ऊंचे स्वर गुंज उठता, ‘अरे आभा ऋचा, देखो कौन आया है!’ और उसके बाद आता अनिवार्य आतिथ्य का क्रम! मेरे मना करने पर कहते, “यह नखरेबाजी जरूरी है क्या? कुछ न कुछ लेंगे जरूर, लेकिन मना करेंगे।” जबकि वस्तुस्थिति यही थी कि आतिथ्य के बिना उनका मन न मानता! आते रहने वाले आत्मीय का भी वे ऐसे स्नेहावेग से स्वागत करते मानो वह बरसों बाद आया है। इस पर भला कौन उनसे न जुड़ जाता! ऐसी ही आवेगमयी हार्दिकता के कारण उनके चारों तरफ ऐसे मित्रों और सहयोगियों की अनन्त श्रृंखला जुड़ गई थी जो उनके किसी भी आह्वान की उपेक्षा करना अशक्य समझते। उनके सान्निध्य में बैठे रहने पर ऐसा लगता जैसे आज कोई उत्सव हो, मंगल पर्व हो या कोई घटना घटित हुई हो। इसलिए उनके सान्निध्य में रहने वाले लोगों का हर पल ही उत्सव जैसा रहता हो तो क्या आश्चर्य! वे उत्सवधर्मी थे। समग्र जीवन उनके लिए उत्सव था। हां, जीवन के हर क्षण में, हर मोड़ पर, हर आदमी के साथ उत्सव की चहल-पहल उन्हें अभिप्रेत थी। ऐसा महापुरुष यदि चला जाय तो यह अनुभूति होना स्वाभाविक ही है कि उनके जाने पर किसी में महोत्सव का अवसान हो गया हो। और अगर लक्ष्य साधना, जीवनन्तता और विराट् मानव की दृष्टि से देखें तो कहेंगे कि वे एक ऐसी जिंदगी जी गए जो क्षणिक थी, एक अणुब्रम के समान। लेकिन जिसके विस्फोट ने निश्चित रूप से दूरभिसंधियों और षडयंत्रों की प्राचीरों को एक ही आघात में ऐसा हिला दिया कि उसका कम्पन सदैव अनुभव किया जाता रहेगा और उसकी ऊर्जा दीर्घकाल तक कर्मपथिकों को ऊर्जस्वित करती रहेगी।

पृथ्वी सम्मेलन और वेद

-डा० धर्मवीर

बहुत दिनों से प्रतीक्षा थी, बहुत बड़ी तैयारी थी, पूरे विश्व की समस्या का समाधान खोजना था और इस तरह पूरा विश्व ही एक जगह जुट गया। जहाँ पर 995 देशों के राष्ट्राध्यक्ष तथा प्रमुख एकत्रित हों उसकी विशालता में क्या सन्देह परन्तु किसी समस्या पर विचार करने के लिये इतने लोग एकत्रित हों तो उस समस्या की गम्भीरता में भी कोई शंका नहीं हो सकती। विचारण्धी समस्या का सम्बन्ध क्योंकि समस्त भाग से है अतः इस सम्मेलन का नाम ही पृथ्वी सम्मेलन रखा गया। यहाँ समस्या एक व्यक्ति या देश की नहीं, व्यक्तिमात्र ही नहीं प्राणिमात्र की है अतः कोई भी देश इस समस्या की सीमा से बाहर नहीं रह सकता।

संसार में जो कुछ है उसे दो भागों में बांटा जा सकता है, एक भोग्य है और दूसरा भोक्ता। भोक्ता, भ श्रेष्ठ है और भोग्य निम्न। इसलिये जड़ की अपेक्षा चेतन श्रेष्ठ क्योंकि जड़ भोग्य है और चेतन भोक्ता। चेतन में भी जो बलवान है वह अधिक उत्कृष्ट है परन्तु जो बुद्धिमान है वह सर्वोत्कृष्ट है। जो बुद्धिमान है वह सबको अपना भोग्य बनाने का सामर्थ्य रखता है इसलिये शेष उसके लिये भोग्य बनकर रह जाता है। मनुष्य सभी प्राणियों से बुद्धिमान है अतः वह संसार का भोक्ता है और संसार उसका भोग्य। जब तक संसार में भोग्य और भोक्ता है संसार का अस्तित्व है। दोनों का अस्तित्व है तभी तक संसार है यदि भोग्य नहीं रहा तो भोक्ता शेष नहीं रह सकता और भोक्ता नहीं रहेगा तो संसार के होने का अर्थ ही शेष नहीं रहेगा। इस प्रकार दोनों की स्थिति आवश्यक है। परमेश्वर ने संसार की वस्तुयें तो सीमित बनाई हैं परन्तु मनुष्य की इच्छा असीमित है। यदि इच्छानुसार होना सम्भव हो तो संसार एक मनुष्य के लिये भी थोड़ा रह जायेगा। यही बात समझने और समझाने की है

गत शताब्दी में जब विज्ञान ने अपने कदम बढ़ाये तब लोगों को अनुभव हुआ वन, पर्वत, नदी, सरोवर, समुद्र एवं खनिज के रूप में अपार सम्पदा और शक्ति पृथ्वी पर बिखरी पड़ी है। इसका लाभ अधिक से

अधिक उठाया जाना चाहिए। आज विकसित कहे जाने वाले देशों ने प्रकृति का यथेच्छ दोहन किया। दोहन करते समय इस बात का विचार नहीं किया कि सभी साधन सीमित हैं और किसी भी साधन का उपयोग करने पर प्रकृति में अवशेष के रूप में जो परिवर्तन होता है उससे प्राकृतिक वातावरण का सन्तुलन परिवर्तित हो जाता है। प्रकृति का नियम है जब उपभोग करने वालों की संख्या बढ़ जाती है तो भोग्य वस्तुओं की मात्रा घट जाती है। इसलिए जब जन बढ़ेगा तो वन घटेगा, जन घटेगा तो वन बढ़ेगा। आज विज्ञान भी स्वीकार करता है प्रकृति की प्रत्येक वस्तु अपनी उपयोगिता प्रदान करने का एक निश्चित सामर्थ्य रखती है। जैसे वृक्ष वायु को शुद्ध करते हैं परन्तु वातावरण की अशुद्धता जब उनके सामर्थ्य से बढ़ जाती है तो वे स्वयं दूषित एवं नष्ट होने लगते हैं। हमने नदियों को गन्दगी का संवाहक समझ लिया परन्तु उसकी सीमा और क्षमता को भूल गये। एक ओर बांध, सिंचाई, नगरों को पेयजल सुलभ कराने के लिये नदी के जल को बहने से रोक दिया वहीं दूसरी ओर इतना गंदा पानी नदियों में डाल दिया कि बड़ी-बड़ी नदियाँ भी गन्दा नाला बनकर रह गईं। हमने समझा समुद्र का जल विषाक्त हो गया है। समुद्री जीवों पर प्राणों का संकट है। जल कचरे, परमाणु विकिरण और पेट्रोल आदि से जीवन के लिए घातक होता जा रहा है। प्रकृति का चक्र वस्तुओं को अपने शुद्ध रूप में परिवर्तित करता है परन्तु वह चक्र भी आज सामर्थ्यहीन हो गया है, वर्षा भी विषाक्त रसायनों से युक्त होने लगी है। ओजोन की पर्त ही पृथ्वी के ऊपर से हटती जा रही है। इसका समाधान क्या है? जो वस्तु पहले बहुत दिखाई देती थी आज वह थोड़ी हो गई क्योंकि उपभोग करने वालों की संख्या अकल्पनीय रूप से बढ़ रही है। और प्रकृति की वस्तुओं का बिना समझे दुरुपयोग हो रहा है, इस कारण आज प्राणियों और वनस्पतियों की प्रजातियाँ ही लुप्त हो गई हैं और होती जा रही है। इस समस्या का समाधान खोजने के लिये पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन था।

उपयुक्त निवेदन से सुस्पष्ट है कि शून्य के अद्यतन ज्ञात गुणों को ही ऋचा "ओ३म् खं ब्रह्म" में अभिव्यक्त किया गया है। जिसका विशद विचार करने पर यह सुविदित होता है कि शून्य (आकाश अथवा ब्रह्म) से मिलकर (जुड़कर या योगकर) सभी अंक एवं संख्या (प्राणी) बने हैं। इसीलिए ब्रह्म को सृष्टि का रचयिता कहा गया है।

अंक-अंक शून्य का विशद विवेचन ऊपर किया जा चुका है। सभी अंकों को सुस्पष्ट करते हुए 'अथर्ववेद' में कहा गया है कि-

"न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते॥१६॥
न पंचमो न षष्ठः सप्तमोनाप्युच्यते॥१७॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते॥१८॥
तमिदं निगतं सहस्र एष एक एक वृदेक एव ॥१९॥
सर्वे आस्मिन् देवा एकवृत्तो भवन्ति॥२०॥
॥अथर्ववेद कां. १३। अनु.४। मं. १६-१८, २०, २१॥

इन मंत्रों का विवेचन करने पर यह विदित होता है कि "परमपिता परमात्मा एक ही है, उससे भिन्न न दूसरा, न तीसरा और न कोई चौथा परमेश्वर है॥१६॥ न पांचवां, न छठवां और न कोई सातवां ईश्वर है॥१७॥ न आठवां, न नववां और न कोई दसवां प्रभु है॥१८॥ किन्तु वह सदा एक अद्वितीय एवं अप्रमेय है, उससे भिन्न कोई भी ईश्वर नहीं है॥२०, २१॥"

स्पष्ट है कि अंकों की उत्पत्ति शून्य से मिलकर एक से होती है। एक प्रकार आरोही क्रम में अंक प्राप्त होते हैं। अर्थात् शून्य (ब्रह्म) से अंकों (सृष्टि) की रचना एक (एक अगोचर परमपिता परमात्मा) से होती है। अर्थात् एक (परमात्मा) सभी में (शून्य में भी) समाहित (गुणन) है। दाशमिक प्रणाली में अंक शून्य से लेकर नौ तक होते हैं, जिनका स्पष्ट प्रमाण यहां पर प्राप्त होता है तथा दस यह इस संख्या पद्धति का आधार है॥ संख्या:- अंक परस्पर मिलकर संख्या का निर्माण करते हैं। इसका सारगर्भित वर्णन करते हुए "यजुर्वेद" में कहा गया है कि :-

"एका च मे तिस्रश्च मे पंच च मे सप्त च मे, सप्त च मे नव च मे, नव च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे, एकादश च मे त्रयोदश च मे पंचदश च मे पंचदश च मे

सप्तदश च मे, सप्तदश च मे नवदश च मे, नवदश च मे एक विंशतिश्च मे, एक विंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे, त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतित्व मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकजिंशच्च मे एकजिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे, यज्ञेन कल्पताम ११ यजुर्वेद अ० १८। मं० २४॥" इस ऋचाका भावार्थ है कि यज्ञ से या मिलाने से या जोड़ने से एक (एक) तिस्रः (तीन) अर्थात् एक एवं दो मिलकर तीन, पञ्च (पांच) सप्त (सात), नवदश (नौ), एकादश (ग्यारह), त्रयोदश (तेरह), पञ्चदश (पन्द्रह), सप्तदश (सत्रह), नवदश (उन्नीस), एकविंशतिः (इक्कीस), त्रयोविंशतिः (तेईस), पञ्चविंशतिः (पच्चीस), सप्तविंशतिः (सत्ताइस), नवविंशतिः (उन्नीस), एकविंशत् (इकतीस), त्रयोविंशति (तैंतीस) आदि की कल्पना करने में समर्थ हों॥२४॥" तथा

"चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे, द्वादश च मे षोडश च मे, षोडश च मे विंशतिश्च मे, विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे, चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे, अष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे, द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे, चत्वारिंशच्च मे, चत्वारिंशच्च मे चतुष्टत्वारिंशच्च मे, चतुष्टत्वारिंशच्च मे अष्टवत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम॥ यजुर्वेद अ. १८। मं. २५॥"

इस ऋचा का तात्पर्य है कि "यज्ञ से या मिलाने से या जोड़ने से चतस्रः (चार), अष्टौ (आठ), अर्थात् चार और चार मिलकर आठ, द्वादश (बारह), षोडश (सोलह), विंशतिः (बीस), चतुर्विंशतिः (चौबीस), अष्टाविंशतिः (अट्ठाइस), द्वात्रिंशत् (बतीस), षट्त्रिंशत् (छतीस), चत्वारिंशत् (चालीस), चतुष्टत्वारिंशत् (चवालीस), अष्टवत्वारिंशत् (अड़तालीस), आदि की कल्पना करने में समर्थ हों॥२५॥

उपर्युक्त दोनों ऋचाओं से अंकगणित की मूल संकल्पनाओं एवं संक्रियाओं यथा विषम तथा सम अंक एवं संख्यायें, जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, पहाड़ा, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, चतुर्थमूल, पंचघात, पंचममूल आदि की सुस्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है। इनमें अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित एवं इनसे सम्बन्धित गणित की प्रत्येक शाखा उपशाखा की संकल्पना भी सुस्पष्ट होती है।

संख्याबोधक संज्ञा:- संख्याओं को सम्बोधित करते हुये यजुर्वेद में कहा गया है कि:-

“इमाः मे अग्ने इष्टकाः धेनवः सन्तु,
एका च दश च, दश च शतम् च, शतम् च सहस्रम्
च, सहस्रम् च, अयुतम् च, अयुतम् च नियुतम् च,
प्रयुतम् च प्रयुतम् च, अर्बुदं च, न्यर्बुदं च, समुद्रश्च, मध्यं
च, अन्तश्च, परार्द्धश्च, एताः मे अग्ने इष्टकाः धेनवः सन्तु
अमुत्रामुष्मिन् लोके ॥ यजुर्वेद अ० १७ मं० २ ॥

इस ऋचा का अभिप्रायः है कि ‘हे अग्ने (विद्वान् पुरुष)! जैसे मे (मेरी) इमाः (ये) इष्टकाः (इष्ट सुख देने वाली यज्ञ की सामग्री) धेनवः (दुग्ध देने वाली गौओं के समान) सन्तु (हों) आपके लिये भी वैसी ही हों। एका (एक), दश (दस), अर्थात् एक का दस गुना दस, शतम् (सौ) अर्थात् दसका दस गुना सौ, सहस्रम् (हजार), अयुतम् (दस हजार), नियुतम् (लाख) प्रयुक्तं (दस लाख) करोड़ अर्बुदं (दस करोड़), न्यर्बुदं (अरब), दस अरब, खरब, दस खरब, नील, समुद्रः (दस नील), मध्यं (पदम्), अन्तः (दस पदम्) परार्द्धः (शंख) ईदं अगले जन्म में हों ॥ २ ॥”

इसको विस्तृत करते हुए ‘सूर्य सिद्धान्त’ आदि ज्योतिष के ग्रन्थों में कहा गया है। कि-

“एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥
वृन्दः खर्वोनिखर्वश्च शंखः पदम् च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्धया क्रमम् ॥”

इसी प्रकार ‘नारदविष्णुपुराण’ के त्रिस्कन्ध ज्योतिष प्रकरण में कहा गया है कि-

एकं दशं शतं चैव सहस्रयुत लक्षकम् ॥ १२ ॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञा चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।
निखर्वं च महापद्मं शंकुर्जलधिरेव च ॥ १३ ॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं संज्ञा दशगुणोत्तराः ॥
नारदविष्णुपुराण ॥”

इसी शब्दावली का उपयोग करते हुये ‘भास्कराचार्य’ ने ‘लीलावती’ में कहा है कि:-

“एकदशशतसहस्रयुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः।
अर्बुदमब्जं खर्वोनिखर्वमहापद्मशंकवस्तस्मात् ॥ २ ॥
जलधिश्चात्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः ॥ ३ ॥”

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संख्या के प्रत्येक अंक का स्थानानुसार विशिष्ट मान भी होता है। अपने

शास्त्रों में व्युत्क्रम संख्या बोधक, संज्ञायें यथा दशांश (दसवां भाग) आदि भी प्रयोग में लायी गयी हैं जिससे “दशमलव” की परिकल्पना सुस्पष्ट होती है।

अनन्तः अनन्त की विस्तृत विवेचना (अब तक समस्त प्रगुण) करते हुये यजुर्वेद में कहा गया है कि:-

“ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णदध्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते
॥ यजुर्वेद १७ । ३ ॥”

इस ऋचा का अभिप्राय है कि ‘वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण पुकारा जाता है, पूर्ण से पूर्ण निकालने पर पूर्ण ही अवशेष के रूप में प्राप्त होता है।”

इन्हीं भावों को अभिव्यक्त करते हुये आचार्य विनाबाभावे ने कहा है कि:-

“पूर्ण है वह पूर्ण है यह, पूर्ण से निस्पन्द होता पूर्ण है।

पूर्ण में से पूष्ण को यदि लें निकालें, शेष तब भी पूर्ण ही रहता है ॥ (विनावा भावे की प्रार्थना से)”

अनन्त (खहर) राशि चर्चा करते हुये भास्कराचार्य ने ‘बीजगणितम्’ में कहा है कि:-

अस्मिन् विकारः खहरे न शशावपि प्रविष्टेष्वपि
निःसृतेषु। बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु
यद्वत् ॥ ४ ॥

इस श्लोक का भावार्थ है कि “जैसे प्रलय एवं सृष्टि के समय अनन्त अच्युत (विष्णु) में समस्त प्राणियों के विलीन होने एवं निकलने पर किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है, वैसे ही खहर राशि (अनन्त राशि) भी किसी भी राशि के घटाने या जोड़ने से अपरिवर्तित रहती है ॥ ४ ॥”

अतः विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों की ऋचाओं के प्रमाणों से स्वयंसिद्ध है कि भारतीय मनीषी गणित विषय के उद्भूत विद्वान् थे।

अंत समय की तैयारी

-देवीप्रसाद मस्करा

अंत समय में परमेश्वर का स्मरण करनेवाला मनुष्य परमेश्वर भाव को प्राप्त होता है, यह गीता के (८/५) श्लोक का अर्थ है। जिसे परमेश्वर का ठीक ठीक स्मरण रहेगा, वह ईश्वर भाव को प्राप्त होगा।

पाप करने में मनुष्य जितना सावधान रहता है, उतना पुण्य करने में नहीं रहता। पाप प्रकट हो गया तो जगत् में अप्रतिष्ठा होगी, ऐसा सोचकर वह पाप को एकाग्रचित्त होकर करता है। इसी कारण अन्त काल में उसे पापों की याद आती है।

अपने किए हुए पाप उसे प्रत्यक्ष दीखते हैं। वह समझता है कि मैंने मरने की कोई तैयारी नहीं की। मेरा अब क्या होगा? मनुष्य और तो सभी कामों की तैयारियाँ करता है, परन्तु मरने की तैयारी नहीं करता। जिस प्रकार शादी की तैयारी करते हो, उसी प्रकार खुशी से मरण के वरण की तैयारी धीरेधीरे करनी चाहिये। मौत के लिए सदा सावधान रहना चाहिये। मृत्यु अर्थात् परमात्मा को बीते हुए जीवन का हिसाब देने का पवित्र दिन। भगवान पूछेंगे मैंने तुम्हें आखें दीं, कान दिये तुमने उसका क्या उपयोग किया? तुम्हें तन और मन दिये थे, तो तुमने उसका क्या किया? साधारण इनकम टैक्स का हिसाब देने में घबड़ाहट होती है, तो फिर पूरे जीवन का हिसाब देने में क्या दशा होगी? प्रभु ने हमें जो दिया है उसका हिसाब तो देना ही होगा।

पूर्व जन्म का शरीर तो चला जाता है परन्तु मन नहीं जाता। लोग अपने तन के कपड़ों की तो खूब चिन्ता करते हैं, परन्तु मरने के पश्चात जो साथ जाता है उसकी चिन्ता नहीं करते। धन, शरीर आदि की चिन्ता करते हैं। परन्तु मरने के पश्चात जो अंगूठी उंगली में होगी, उसको भी लोग निकाल लेते हैं।

जब तक मनुष्य में बल रहता है तब तक वह मृत्यु के नग्न सत्य को भूले रहता है। इस प्रकार अज्ञानी मनुष्य जीवन की वास्तविक समस्याओं के प्रति कोई विवेक पूर्ण

जिज्ञासा नहीं करता! सभी लोग सोचते हैं कि वे अभी नहीं मरेंगे। यद्यपि प्रत्येक क्षण वे नेत्रों से मृत्यु का प्रमाण देखा करते हैं। पशुता और मानवता में यही अन्तर है। बकरी जैसे पशु के आगे डाली गई घास के पत्ते प्रेमपूर्वक खाती रहती है, उसको यह ज्ञान नहीं होता कि कुछ ही देर बाद उसके गले के ऊपर छुरी फिरने वाली है। यदि मनुष्य को यह ज्ञान नहीं कि कभी भी उसकी मौत आने वाली है तो फिर उस मनुष्य में और पशु में अन्तर ही क्या रह जाता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति अगले जीवन के लिए अथवा जन्म मृत्यु रूपी बारम्बार होने वाले भव रोग से मुक्त होने की तैयारी करता है।

परीक्षित महाराज को चेतावनी दी गई थी कि सात दिन में उनकी मृत्यु हो जायेगी। इतना सुनते ही उन्होंने अगली अवस्था की तैयारी के लिए तत्काल ही अपने राजमहल का त्याग कर दिया। उनके पास मृत्यु की तैयारी करने के लिए सात दिन तो थे। परन्तु जहाँ हम लोगों का प्रश्न है, हमको निश्चित मृत्यु की तिथि की जानकारी नहीं रहती। यहां तक कि अनेक सिद्ध महापुरुष भी यह गणना नहीं कर सके कि अगले पांच मिनटों में उनकी मृत्यु होने जा रही है।

परमेश्वर का स्मरण करने वाला मनुष्य परमेश्वर भाव को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु यह है बड़ा कठिन। अन्त समय में संपूर्ण शरीर शिथिल हो जाता है, मस्तिष्क कार्य नहीं करता, मन बुद्धि, चित्त आदि सब क्षीण हो जाते हैं, सोच विचार करना भी असंभव हो जाता है और किसी किसी समय तो शरीर की पीड़ा भी असह्य हो जाती है। कई तो मूर्च्छित हो जाते हैं, ऐसे समय में परमेश्वर का स्मरण करना कैसे संभव हो सकता है?

इसके उत्तर में इतना ही कहना है कि मरने के समय मनुष्य कितना भी क्षीण हो, तो भी वह कुछ कहता ही है, अर्थात् संसार की बातों का स्मरण वह करता है। दिन रात सांसारिक बातों का ध्यान करने के कारण ही इस को सांसारिक बातों का स्मरण मृत्यु के समय भी हो जाता है।

यदि यह बात सत्य है तो हमें एक विशेष महत्वपूर्ण नियम का पता लग गया कि, मनुष्य, जिस बात का दिन रात ध्यान करेगा, उसका स्मरण उसको मृत्यु के समय होगा ही।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावं भावितः। गीता ८/६।

भावार्थ- मनुष्य ईश्वर का नित्य स्मरण करता रहेगा, तो उसे अंत समय में भी ईश्वर का स्मरण होगा। जिसको ईश्वर का स्मरण होगा, वह निःसंदेह ईश्वर भाव को प्राप्त होगा। जो मनुष्य जिस भावना का सदा स्मरण करता है, उसका मन सदा उसी भावना में संलग्न रहने के कारण देह छोड़ने के पश्चात भी उसी भावना को प्राप्त होता है। अर्थात् जो शुभभावना धारण करेगा, उसकी शुभ गति होगी और जो अशुभ भावना धारण करेगा, निःसंदेह उसकी अशुभगति होगी। अतः मनुष्य सदा शुद्ध बुद्धि मुक्त स्वरूप ईश्वर का स्मरण करे, उसी में मन बुद्धि को लगावे और उसी में तन्मय रहे। ऐसा करने से वह उसी के स्वरूप को पा सकेगा, इसमें संदेह नहीं है। इस सतत ईश्वर का ध्यान करने का नाम ही गीता का “अभ्यास-योग” है।

जैसे लोहे को अग्नि में रखने से वह कुछ समय में अग्नि भाव युक्त होकर अग्निरूप हो जाता है। लकड़ी भी

इसी तरह अग्निरूप धारण कर लेती है। लकड़ी प्रारंभ में जलती नहीं, परन्तु जिस समय वह अग्निरूप होती है उस समय अग्नि के समान ही जलती है, अर्थात् अग्नि के सब गुण धर्म लकड़ी और लोहे में आ जाते हैं। इसी तरह यह सिद्ध पुरुष भी परमात्मा के सब गुण धर्मों से युक्त हो जाता है अर्थात् वह परमात्म भाव धारण कर लेता है। यदि यह कहा जाय तो भी अनुचित न होगा कि इस समय वह नर से नारायण बन जाता है, जीव से शिव हो जाता है, पुरुष से पुरुषोत्तम बन जाता है।

यदि कोई मनुष्य बीमार हो, और निद्रा के समय “मैं निरोग हूँ” यह विचार मन में स्थिर हो जाये तो निद्रापर्यन्त यही विचार उसके मन में स्थिर रहेगा और जागने पर उसको अनुभव होगा कि पूर्व की अपेक्षा उसको अधिक आरोग्य प्राप्त हुआ है। इसी तरह यदि निद्रा आने के समय उसके मन में परमात्मा का विचार होगा, तो निद्रा में भी यही विचार स्थिर रहेगा और उसको अपूर्व आनंद प्राप्त होगा, उसको अंत समय में, मृत्यु के समय में भी परमेश्वर का स्मरण अवश्य होगा और उसका बेड़ा पार हो जायेगा। यह मार्ग मानवीय उन्नति का है और इससे मनुष्य की ऐहिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो सकती है।



पुस्तक समालोचना

श्री रामजन्म भूमि-अयोध्या- (बाबरी मस्जिद)

-(एक ऐतिहासिक झलक)

लेखक-प्रकाशक डा० बी०पी० शर्मा, ११७४/२२-बी चण्डीगढ़।

इस पुस्तिका में पांच फोटो ब्लाकों के साथ लेखक ने अयोध्या में श्री राम जन्म स्थान मंदिर एवं बाबरी मस्जिद विषयक प्रमाणिक तथ्यों की खोजपूर्वक यथार्थ दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं।

विषयानुसार पुस्तक के सात अध्यायों में अयोध्या नगरी का निर्माण काल, इक्ष्वाकु कुल का श्री रामचन्द्र एवं उनके पुत्र लव कुश तक वंश वृक्ष का शास्त्रनुमोदित व्योरा

विवराणित है। राम राज्य कौशल प्रदेश की सीमाएँ, अयोध्या स्थित राज महल “रामकोट” में श्री राम जन्म स्थान-“यज्ञवेदी” पर मंदिर का निर्माण, यवन शासन काल में भारत की धार्मिक राजधानी अयोध्या की दुर्दशा, जैन-बौद्ध धर्मों की जन्म स्थली अयोध्या एवं सन् १५२८ में बाबर द्वारा आक्रमण के साथ श्री राम मंदिर की तोड़ फोड़ से बाबरी मस्जिद का निर्माण जैसे प्रचलित विवादों के सम्बंध में सप्रमाण-फारसी लिपि में दो शिलालेखों सहित ऐतिहासिक जानकारी के लिए यह एक आवश्यक उपयोगी पुस्तक है। लेखक की खोज लग्न प्रशंसनीय है।



३० जनज्ञान (मासिक)

पौष संवत् २०४६

संस्कृति की प्रतिष्ठा और गौ

—उपेन्द्रदत्त शर्मा 'आर्य'

गौ आर्य (हिन्दू) संस्कृति की प्रतिष्ठा है। यदि गौर वंश सुरक्षित है तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि संस्कृति जीवित है।

आज गौ वंश का नाश आतताइयों द्वारा किया जा रहा है। गौओं का पालन पोषण भी जनता के लिए भार स्वरूप हो गया है। वर्तमान भारत के अधिकांश लोग भैंसे खरीदना अधिक पसंद करते हैं, गाय नहीं। वैसे लगभग सभी हिन्दू देवी के रूप में गौ को मानते हैं और दीपावली के बाद गोवर्धन के रूप में गौ के गोबर की पूजा औपचारिक रूप से करते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष रूप में गौ की सेवा करना अपना अपमान समझते हैं।

सृष्टि की आदि पुस्तक "वेद" में भी गऊ की महत्ता बड़े स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। अथर्ववेद में कहा गया है।

“यत्र धेनुं कल्याणी नानइवान्सहतेधुरम्।
विजानीहि तत्र ब्रह्मणो रात्रि वसति पापया।।”

अर्थात्- जिस घर, गांव या शहर में गौ नहीं एवं भार वहन करने में समर्थ बैल नहीं उस घर ग्राम या नगर में ब्राह्मण यदि एक रात्रि भी निवास करता है तो पाप का भागी होता है।

‘वेद’ में स्थान-स्थान पर ‘घृतं तीव्रं जुहोतनः’ “घृतेन वर्द्धयामसि”, “घृतेन बोधयतातिथिम्” आदि का विधान आया है। वहां सर्वत्र गोघृत का ही वर्णन है तथा जहां कहीं भी दुग्ध का वर्णन आया है, वो मात्र गोदुग्ध का ही वर्णन है। भैंसे के दूध का तो ‘वेद’ में नाम तक नहीं मिलता।

‘अथर्ववेद’ में कहा गया है।

“पयोधेनूनां रस औषधीनां जवमर्वतां” कवयो य इन्वय”

अर्थात् जिन लोगों में बुद्धि है वो जानते हैं कि गौ का

दूध औषधियों का रस है, गौ दुग्ध से बड़े-बड़े रोगों का नाश होता है तथा शरीर और मस्तिष्क में अद्भुत स्फूर्ति संचरित होती है।

‘वेद’ में गौ की इतनी विस्तृत महत्ता है कि ‘यजुर्वेद’ का प्रथम मंत्र ही गौ की प्रार्थना से है।

“ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वही र्यजमानस्य पशून् पाहि”।

अर्थात् हे ईश्वर हमारे गौ आदि प्रणियों की रक्षा कर जिससे हम गौ के दिये अमृत का पान कर सुखी रहें।

‘वेद’ में ही नहीं वरन् शास्त्रों में भी स्थान-स्थान पर गौ की चर्चा की गई है।

“यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी।
मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमः क्षय।।”

अर्थात्- बिना गौ के सारे कर्मकाण्ड निष्फल और अधूरे हैं, यज्ञ की सर्वश्रेष्ठ दक्षिणा गौ है। गौ के बिना गृह प्रतिष्ठा शून्य मात्र है।

इसी विचार धारा का अनुसरण पहले समाज के प्रत्येक नर-नारी करते थे। बड़े-बड़े राजा महाराजा भी गौ की सेवा करना अपना धर्म समझते थे और जीवन भर गौ की सेवा करते थे।

राजा दिलीप, मान्धाता, उशीनर, पुरूरवा, नंद आदि अनेक महान पुरुषों ने गौ की सेवा की और संसार भर में प्रसिद्धि पायी।

प्राचीन समाज में गौ पालना सम्मान का सूचक होता था एवं सभी लोग गौ पालते थे। परन्तु आज के युग में-बकरी, भेड़ सूअर, मुर्गी, मछली और कुत्ते आदि के पालने पर विशेष बल दिया जा रहा है। परन्तु गौ के पालन

पर कोई विशेष ध्यान नहीं है।

इसी कारण देश भर में रोज लाखों गौ भूखी मरती हैं और बूचड़खानों में काटी जाती हैं। स्वयं ही सोचिए कि इससे बढ़कर 'हिन्दू' जाति के लिये कौन सी लज्जा या कलंक की बात होगी।

महान् गौ भक्त महर्षि दयानन्द ने गौ की रक्षा के पवित्र आन्दोलन का सूत्रपात किया था। ऋषि ने इसी संदर्भ में गौ करुणानिधि नामक पुस्तक भी लिखी और देश के नागरिकों के सामने गौ की दशा को रखा और उनको गौ रक्षा व गौपालन की प्रेरणा दी। ऋषि ने "गऊ का पालन हो" का नाराभी दिया था।

एक समय था कि संसार के प्रत्येक देश में गौ वध घोर पाप समझा जाता था। पतित से पतित सम्प्रदाय या पन्थ भी

गौ वध को अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखता था। यही नहीं एक पूरा देश ही 'धेनुमार्ग' (वर्तमान डेनमार्क) के नाम से विख्यात था। जिसमें सर्वाधिक गौ पालन व दुग्ध उत्पादन होता था और आज भी होता है।

परन्तु आज इस देव भूमि भारत में ही गौ वध हो रहा है। क्या यही एक विशेषता है जिस कारण हम गर्व करते हैं कि "हम भारतीय हैं।"

क्या हमारी मानसिक धारणाएँ, हमारी सरकार हमें गौ पालन की ओर प्रेरित करेगी?

शायद नहीं! क्योंकि हमारे मस्तिष्क पर बकरी और भैंस का दूध छाया है और सरकार के मस्तिष्क में अंडा, मछली, मुर्गा, बकरा और गौ मांस घुसा है। इन सब के रहते हुए भला गौ पालन का ध्यान कैसे किसे आएगा?



ये फूल महक जाये तो, कुछ रोशनी तो हो

-सन्तोष 'कण्व'

सूरज न बन सको तो दीप बनके ही जलो।

दिखता नहीं अंधेरे में कुछ रोशनी तो हो।।

कैसी उमस कि देखो हवा भी तो बन्द है।

ये द्वार ही खुल जाएं तो कुछ रोशनी तो हो।।

साधू का भेष धर के ये डाकू हैं घूमते।

रंग इनका उतर जाए तो कुछ रोशनी तो हो।।।

माली ही यहां बाग के कलियों को मसलते।

ये फूल महक जाएं तो कुछ रोशनी तो हो।।

लाशों के ढेर हैं पड़े वीभत्स समां है।

पक्षी ये चहक जाएं तो कुछ रोशनी तो हो।।

वीरान है अपना चमन हर शाख पे बैठे।

उल्लू ये उतर जाएं तो कुछ रोशनी तो हो।।

काली अंधेरी रात में चहुं ओर घूमते।

विषधर ये कुचल जाएं तो कुछ रोशनी तो हो।।

बाहर भी है भीतर भी है घन घोर अंधेरा।

ये दीप ही जल जाएं तो कुछ रोशनी तो हो।।

हिन्दुत्वः भारत की एकता का मूलसूत्र

— वामनदास अग्रवाल

हिन्दुत्व एक समग्र जीवन-पद्धति का नाम है, जो इस देश के भिन्न-भिन्न लोगों को सूत्रबद्ध किये हुए है। हिंदुत्व ही भारत की एकता का मूलसूत्र है। विभिन्नता या विविधता में एकता ही हिन्दुत्व है। भारत जैसा विशाल देश जहां जाति, भाषा, पंथ की इतनी विविधता है, हजारों वर्षों से एकात्म कैसे बना रहा? कौन सा सूत्र था जिसने इन सारी विभिन्नताओं के बावजूद सबको एक साथ बनाये रखा? यह सूत्र हिन्दुत्व का है जो सबको जोड़े हुए है। आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर एकात्मता की जो भावना हिन्दुत्व में है, उसी के कारण राष्ट्रीय स्तर पर भी एकात्मता की भावना है। हिन्दुत्व कोई पंथ, मजहब या रेलिजन नहीं है, बल्कि एक संस्कृति है, एक सांस्कृतिक आन्दोलन है। केवल हिन्दुत्व के विकास के द्वारा ही भारत में लोकतंत्र, समता (समा. जवाद), राष्ट्रीय एकात्मता और पंथनिरपेक्षता बनी रह सकती है। वस्तुतः हिन्दुत्व इस देश की आत्मा है, रीढ़ है, प्रकृति है, शक्ति है, राष्ट्रीयता है।

हिन्दुत्व एक सूत्र की तरह है जो विभिन्न जातियों, पंथों, भाषाओं, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज वालों को माला की तरह गूंथता है, जोड़ता है। विविधता में स्वतंत्रता है, सौन्दर्य है, आनन्द है। भगवान की इस सृष्टि में विविधता पाई जाती है, एकरूपता नहीं। कोई दो व्यक्ति एक समान नहीं हैं। दोनों के शरीर में, रूप में, रंग में, बौद्धिक तथा शारीरिक क्षमता में भिन्नता है। लेकिन मूलतः सब एक ही हैं, क्योंकि सबमें एक आत्म-तत्त्व या परमात्मत्व विद्यमान है। यही एकता का सूत्र है, जो सब मनुष्यों को जोड़ता है। हिन्दुत्व भी ऐसा ही सूत्र है। वेद में कहा गया है— 'एकं सद्ब्रह्म बहुधा वदन्ति'। अर्थात् सत्य एक है, लेकिन उसके नाम रूप अनेक हैं। यानि उस तक पहुँचने के मार्ग, पंथ अनेक हैं। विविधता में एकता, भिन्नता में अभिन्नता ही शाश्वत हिंदुजीवन है। हिन्दुत्व विभिन्न दर्शनग्राही (Eclectic) तथा निरन्तर प्रसरणशील सामाजिक-धार्मिक पद्धति (Ever&Expansive Socio-religious System) है। सर्वोच्च न्यायालय ने एक वाद में कहा था-हिन्दुत्व एक सभ्यता और उपासना-पद्धतियों का एकीकरण दोनों है,

जिसका न आदि है, न संस्थापक हैं, न केन्द्रीय सत्ता है, न धर्माधिकारी वर्ग अथवा संघटन है (द्रष्टव्य-१६७७ (१) एन.एल. जे. पृष्ठ-५)।

हिन्दुत्व मतवादों का कोई समूह (Set of dogmas) नहीं है। हिन्दुत्व एक अनुभूति है, एक दर्शन है। यह अपने अनुयायियों को सत्य की खोज की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। इसीलिए बुद्ध, महावीर, गुरुनानक, कबीर आदि के द्वारा जो सुधार आन्दोलन चलाया गया, उसने क्रुद्ध असहमति (Angry dissenter) कारूप नहीं लिया। इन आन्दोलनों ने हिन्दुचिन्तन और जीवन को समृद्ध किया। चूँकि हिन्दुत्व में मतवाद (dogmas) नहीं थे, इसलिए लोग एक भगवान में, लाखों भगवान में अथवा भगवान नहीं है, मैं विश्वास कर सकते थे और हिन्दु बने रह सकते थे। हिन्दुओं का विश्वास है कि हर व्यक्ति अपनी रूचि के अनुसार भगवान के जिस रूप की चाहे पूजा कर सकता है। सभी को भगवान की प्राप्ति होगी, यदि उसकी प्राप्ति का प्रयास पूरी निष्ठा से किया जाए। इसीलिए हिन्दुत्व मतान्तरण करनेवाला (Proselytizing) मजहब या रिलिजन नहीं है। मतान्तरण करने का विचार इस अनुभव से आरंभ होता है कि मेरा मत या मजहब ही केवल सही है और इसलिए अन्य सभी को इसमें मतान्तरित होकर आ जाना चाहिए।

हिन्दु हर वस्तु में, कण-कण में, भगवान का दर्शन करते हैं। पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, पशु-पक्षी में भी भगवान हैं, ऐसा मानते हैं। इसीलिए वे पीपल, वट, तुलसी, गौ, नाग आदि की पूजा करते हैं। सुब्रह्मण्यम स्वामी के मंदिर में मयूर, शिव मंदिर में नाग और नान्दी, विष्णु मंदिर में वानर या गरुड़ आदि होते हैं जिनकी पूजा होती है। इस प्रकार, हिन्दु जड़ (प्रकृति) और जीव के पूजक हैं यानि Animist हैं। नागालैंड के नागलोग नागपूजक होने के कारण ही नाग कहलाये। नाममंचमी नागपूजा का दिन माना है। यम, वरूण, वायु, सूर्य, अग्नि आदि की पूजा और प्रार्थना करते हैं। इन सबकी पूजा प्रार्थना करते हुए भी वैदिक ऋषियों ने कहा है कि विविध नाम और रूपों, चिन्हों और प्रतीकों के

मूल में एक है जो सत्य है—‘एकं सद्ब्रिषा बहुधा वदन्ति’। हिन्दुओं का मूलभूत विश्वास है कि सभी रूपों और अभिव्यक्तियों के पीछे सत्य एक है। इसलिए हमलोग पत्थर में, वृक्ष में, नदियों में, पर्वतों में, मूर्तियों में, आदर्श में, जिस रूप में चाहें, भगवान की पूजा करते हुए भी हम सब एक हैं, एकात्म हैं। हम सब हिंदु हैं।

हिन्दुत्व कोई स्थिर (Static) वेस्तु नहीं है, यह एक आन्दोलन है। हम लोग यह विश्वास नहीं करते कि हमारे अवतार अन्तिम और आखिरी सन्देशवाहक (पैगम्बर) थे। हमलोग निरन्तर अपने धर्मशास्त्रों की व्याख्या करते रहते हैं और नए तथ्यों और नयी अन्तर्दृष्टि के आलोक में अपनी धार्मिक पद्धतियों या आचरणों का पुनर्गठन करते रहते हैं। इसीलिए हमारे यहां समय-समय पर स्मृतियाँ लिखी जाती रहीं, जो हमारी विचारधारा के विकास को प्रतिबिम्बित करती हैं। इसीलिए वायु और वरुण जैसे प्राचीन देवताओं का स्थान अपेक्षाकृत आधुनिक देवता शिव और विष्णु और उनसे भी आधुनिक राम और कृष्ण ने ले लिया है। आद्य शंकराचार्य ने पंचायतन-पंच देवताओं शिव, विष्णु, सूर्य गणपति के संयुक्त पूजन का प्रवर्तन किया, यद्यपि वे स्वयं अद्वैत में विश्वास रखते थे। उन्होंने शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों के पुराने विवाद को मिटाकर दोनों के बीच मैत्री स्थापित करने के लिए ही ऐसा किया था।

हिन्दुत्व कोई लौह-चौखटा (Rigid Framework) नहीं है, जबकि इसाईयत और इस्लामियत एवं साम्यवाद लौह चौखटे हैं। ये सारी दुनिया के लोगों को एक चौखटे के अन्दर, सब में एक रूपता लाना चाहते हैं। इसीलिए ये सब विफल हुए हैं। जो लोग इनमें आए, उनमें आपस में झगड़े मारकाट होने लगी, क्योंकि यह मानव-स्वभाव, मानव मनोविज्ञान के विरुद्ध है कि सबमें एकरूपता आ जाये। हिन्दुओं ने इस मनोविज्ञान को समझा था और इसीलिए उन्होंने विविधता को स्वीकार किया था। साथ ही उन्होंने सबको एक सूत्र में जोड़ने की भी व्यवस्था की थी।

भारत जैसे विशाल देश में खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा उपासना-पद्धति आदि की विभिन्नता या विविधता है, लेकिन विभेद नहीं है। यह विभिन्नता या विविधता वाह्य है। मूलरूप से, या आन्तरिक रूप से, समस्त भारत के लोगों में एकात्मता रही है। सबको एकात्म बनाए

रखने का सूत्र हिंदुत्व का ही है, जो सबको जोड़े हुए है। यह सूत्र जब जब कमजोर हुआ है, तब तब इस देश का कुछ भाग इसके हाथ से निकल गया। पराधीनता काल में इस सूत्र को कमजोर या तोड़ने की आक्रमणकारियों द्वारा पूरी चेष्टा की गई। पराधीनता काल में ही देश का क्षेत्र संकुचित हुआ। संसार का कोई देश इतना संकुचित नहीं हुआ। पराधीनता के पूर्व, इस देश की सीमायें अफगानिस्तान और बलोचिस्तान के पश्चिम में थीं और वहां के सारे पहाड़ी प्रदेश हिन्दुस्तान के अंग थे। पराधीनता काल में देश के अनेक भाग जैसे अफगानिस्तान (गांधार प्रदेश) वर्मा (ब्रह्मदेश), श्रीलंका तथा पाकिस्तान (बंगलादेश सहित) भारत से बिछुड़ गए। अफगानिस्तान ८३२ ई. में ब्रह्म देश तथा श्रीलंका १६३५ ई. में तथा पाकिस्तान १६४७ ई. में बिछुड़ गए। कश्मीर का ४० प्रतिशत भूभाग १६४८ ई. में तिब्बत १६५२ ई. में तथा हिमालय में अक्षय चिह्न का १२ हजार वर्गमील क्षेत्र १६६२ ई. में हमसे बिछुड़ गए।

विदेशी (अंग्रेजी) शासकों ने राजनीतिक स्वार्थवश, हिन्दुत्व को साम्प्रदायिक कहकर हिंदु समाज को तोड़ने का, उसमें विभेद उत्पन्न करने का कार्य शुरू किया और इस क्रम में हिंदु मुस्लिम हिंदु सिख भेद पैदा किया। बौद्ध, जैन, हरिजन और वनवासी (आदिवासी) को भी हिंदु समाज से अलग रखा गया। आज स्वतंत्र भारत में भी राजनीतिज्ञ यही कर रहे हैं। हिन्दुओं को तोड़ने का आज विश्व स्तर पर प्रयास चल रहा है। इसीलिए हिन्दु शब्द को हीनता, साम्प्रदायिकता, संकीर्णता का पर्याय या सूचक बताया जाता है और बहुत से हिन्दु अज्ञानवश, अपने को हिन्दु कहने से कतराते हैं। राजनीतिज्ञ भी सत्ता के लिए यही कर रहे हैं और हिन्दुओं में जाति, पंथ और क्षेत्र के नाम पर अलगाव की भावना उभाड़ रहे हैं। लोग इस जाल में फंस रहे हैं। लोग अपने को हिन्दु न कहकर बिहारी, बंगाली, पंजाबी, तमिल आदि कहते हैं अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कहते हैं, जिनमें से प्रत्येक में सैकड़ों विभाग हैं। यही बात भाषा के सम्बन्ध में है। यहां दर्जनों भाषायें और सैकड़ों बोलियाँ हैं। कुछ लोग सारे देश को विभिन्न भाषायी क्षेत्रों में बांटना चाहते हैं। इससे भी देश टूटेगा। खालिस्तान, गोरखालैंड, झारखंड बोडोलैंड आदि की मांग से भी देश टूटेगा, खंडित होगा। हिन्दुत्व ही देश को जोड़नेवाला एकमात्र सूत्र है।

हिन्दु शब्द प्राचीन काल से (पांच हजार वर्ष से भी अधिक काल से) प्रयुक्त होने वाला राष्ट्रीय शब्द है। यह पंथ या मजहब या सम्प्रदाय का बोधक नहीं है। यह राष्ट्र और समाज का, एक श्रेष्ठ जीवन-पद्धति का बोधक है। हिन्दुस्थान (भारत) में रहनेवाले सभी लोग हिन्दु हैं चाहे वे किसी पंथ, मजहब, भाषा या जाति के हों। वे सभी हिंदु हैं जिनकी निष्ठा मातृभूमि के प्रति है, जिनकी इस भूमि की संस्कृति के प्रति आस्था है तथा जिनकी इस भूमि पर उत्पन्न महापुरुषों के प्रति श्रद्धा है। बौद्ध, जैन, सिख, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम सभी हिंदु हैं।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दु भियु ऑफ लाईफ' में कहा है-- "हिन्दुत्व कोई पंथ नहीं है, बल्कि पंथों का समागम है। यह एक विचारधारा की अपेक्षा जीवन-पद्धति अधिक है। आस्तिक और नास्तिक, संशयी और अविश्वासी, सभी हिन्दु हो सकते हैं, यदि वे हिन्दु संस्कृति और जीवन-प्रणाली को स्वीकार करते हैं। हिन्दुत्व पंथगत एकरूपता पर बल नहीं देता, बल्कि जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण पर बल देता है। हिन्दुत्व कोई सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि यह उन सब लोगों का साहचर्य है जो न्याय के नियम को स्वीकार करते हैं और सत्य का निष्ठापूर्वक अन्वेषण करते हैं।

"हिन्दुत्व की प्रकृति के कारण ही इस देश में अतिप्राचीन काल से अनेकों पंथों और सम्प्रदायों का अस्तित्व रहा है। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि सुप्रसिद्ध पंथ इस देश में प्राचीन काल से प्रचलित थे। सिख पंथ, ब्रह्मसमाज, तथा राधास्वामी सम्प्रदाय आदि अपेक्षाकृत आधुनिक पंथ हैं जो इस देश में प्रचलित रहे हैं। पारसियों का जोरोस्ट्रियन मत, ईसाईयत, इस्लाम आदि भी भारत के सैकड़ों पंथों में जुड़ गए हैं। यदि वे सत्याचरण को अपनाते हैं तो उनसे मतभेद होने का कोई कारण नहीं है और उन सबको सनातन (हिन्दु) धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत लाया जा सकता है। धर्म की यह अवधारणा भारतीय चिन्तनधारा और संस्कृति की मूलभूत एवं प्रमुख विशेषता है।"

हिन्दुत्व के अन्तर्गत आचार-विचार व्यवहार सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यतायें हैं-

१) परमात्मा एक है और उसी की रची समस्त सृष्टि है वही इस जगत् का भी निर्माता है। वस्तुतः समस्त पंच

भौतिक दृष्टि में एक ही चिन्मय सत्ता व्याप्त है।

२) जीवन अखंड दिव्य चिन्मय समग्र सत्ता है।

३) मनुष्य में एक तत्त्व जीवात्मा है, जो कर्म करने में स्वतंत्र है, यद्यपि इसके करने की सामर्थ्य सीमित है। उसी सीमा के भीतर वह कर्म करने में स्वतंत्र है। यह सीमा उसकी अल्पशक्ति और अल्पज्ञान के कारण है।

४) कर्मफल इस जीवात्मा के हाथ में नहीं है। जीवात्मा को कर्मफल ऋतों (प्राकृतिक नियमों) के अनुसार भुगनना पड़ता है।

५) दोनों तत्त्व (परमात्मा और जीवात्मा) अनादि और अविनाशी हैं। एक असीम शक्ति का स्वामी है और दूसरा अल्पशक्ति और ज्ञान का। अल्पज्ञान वाला जीवात्मा संसार के मोहजाल में फंस जाता है और बार-बार जन्म लेता है। इन जन्मों के लेने में दो प्रकार की गतियाँ हैं--एक ऊपर को अर्थात् निम्नकोटि के जीवों से श्रेष्ठ कोटि के जीवों में और दूसरी नीचे को अर्थात् उच्चकोटि के जीवों से निम्नकोटि के जीवों में ले जाती है। ऊपर की गति का अन्त ब्रह्मधाम में है।

६) प्राणी का शरीर और अन्य निर्जीव वस्तुयें प्रकृति से बनी हैं। ये दोनों आत्मतत्त्व से भिन्न हैं। प्रकृति चेतना और गति से शून्य हैं।

७) मानव-जीवन में मनुष्य का स्तर उसके गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार होता है। एक परिवार में, एक जाति में अथवा एक राष्ट्र में तथा मनुष्य समाज में गुण, कर्म, स्वभाव से ही मनुष्य का मूल्यांकन किया जाता है।

८) व्यवहार में यह सिद्धान्त है कि जैसा एक प्राणी अपने साथ व्यवहार चाहता है, वैसा ही व्यवहार वह दूसरों के साथ करे। जो व्यवहार स्वयं को अप्रिय प्रतीत हो, वैसा व्यवहार दूसरों के प्रति न करे। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"।

९) सबके लिए व्यवहार की सामान्य बात है- धृति (धैर्य), क्षमा, दया, मन पर नियंत्रण, बुद्धि का प्रयोग ज्ञान का संचय मन, वचन और कर्म से सत्य का व्यवहार और अक्रोध।

१०) प्रत्येक व्यक्ति के लिए बुद्धि तर्क और ऋतों (प्राकृतिक नियमों) से सिद्ध बात ही माननीय है।

इस प्रकार, उपर्युक्त आचार, विचार, व्यवहार सम्बन्धी कुछ मान्यतायें हैं जो इस देश में हजारों वर्ष से बसे जन समूह में स्वीकार की गई हैं, जिन्हें हिंदु कहा जाता है। समय समय पर बाहर से, अन्य भूखंडों से, भिन्न-भिन्न रूप-रंग के लोग भारत में आए और इन मान्यताओं को स्वीकार कर हिन्दु समाज में उसी प्रकार मिल गए जैसे समुद्र में नदियाँ। अतः हिन्दु समाज ऐसे लोगों का समाज है जिनका आचार, विचार, व्यवहार समान है, जो देश जाति, नस्ल अथवा रूप-रंग के भेद को नहीं मानते। सभी हिन्दु हैं यदि वे आचार, विचार, व्यवहार सम्बन्धी उपर्युक्त मान्यताओं को स्वीकार करते हैं। डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार हिन्दुत्व किसी जातीय तथ्य पर आधारित नहीं है। हिन्दु समुदाय एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में रहा है, जिसका एक ही इतिहास, साहित्य और सभ्यता है।

अंग्रेज जन्म के आधार पर अपनी जाति या समाज (People) को मानते हैं। हिन्दुओं की तरह किसी आचार, विचार, व्यवहार के आधार पर नहीं। अंग्रेजी समाज में उन्हीं लोगों को स्वीकार किया गया जो इंग्लैंड में जन्मा हो और जिसका इंग्लैंड के नागरिक रजिस्टर में नाम अंकित हो। मुसलमान मजहब के आधार पर अपनी जाति या समाज (People) को मानते हैं। मजहब की सामान्य मान्यताओं में कोई पैगम्बर अथवा कोई धर्म ग्रंथ आदि स्वीकार किया जाता है। लेकिन हिन्दुओं के साथ ऐसी बात नहीं है। हिन्दुओं की मान्यताओं में किसी गुरु या धर्म ग्रंथ का नाम नहीं है। उनमें आचार, विचार एवं व्यवहार सम्बन्धी कुछ स्वीकारोक्तियाँ हैं। उनमें भी एक शर्त है। वह यह कि जो बात प्राकृतिक नियमों (ऋत) के विपरीत हो और जो तर्क अर्थात् बुद्धि से सिद्ध न हो सके, वह मान्य नहीं है। गीता में कहा गया है-- "दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय। बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः" (२/४६)। वेद की अपौरुषेयता, परमात्मा, जीवात्मा, कर्मफल आदि मान्यतायें भी बुद्धि सम्मत हैं। इस प्रकार बुद्धि से सिद्ध बात को मानना ही हिन्दुत्व है।

हिन्दुत्व इतना व्यापक और उदात्त है कि इसमें सब पंथ, मत, सम्प्रदाय आ जाते हैं। हिन्दुत्व, विरोधी भावों को भी ग्रहण कर उसे समन्वित रूप प्रदान कर देता है। इसलिए इसमें आत्मसात करने की अपार क्षमता रही है। ऋग्वेद में कहा गया है - "आनो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः"। अर्थात् सारे विश्व से उत्तम विचार हमारे पास आने दो। हिन्दुत्व की यह ग्रहणशीलता और समन्वय वादिता इसे प्रगतिशील लोचपूर्ण और नवीन बनाये हुए है। सम्पूर्ण मानव जाति को शान्ति और अमरत्व का सन्देश देनेवाला हिन्दुत्व ही है।

हिन्दुत्व में देश, काल की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार समाज की रीति-नीति को दिशा देने के उद्देश्य से पूर्वकाल में महर्षि मनु, पाराशर, याज्ञवल्क्य से देवल तक अनेक स्मृतिकार हुए। इसके अतिरिक्त, इस देश में समय-समय पर अनेक महापुरुषों एवं संतों ने जन्म लिया और समाज का मार्गदर्शन किया। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर उसे सुधार की ओर अग्रसर किया। राम, कृष्ण, बाल्मीकि, व्यास, महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, निर्वाकाचार्य, रामानन्द, रैदास, कबीर दास, नानकदेव, तुलसीदास, चैतन्य देव, गुरु रामदास, महात्मा फूले, नारायण स्वामी, राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण देव, विवेकानन्द, दयानन्द, बालगंगाधर तिलक, श्रद्धानन्द, गांधी, हेडगेवार, गोलबलकर प्रभृति महापुरुषों ने हिन्दु जीवन की अनेक विविधताओं में सामंजस्य स्थापित कर हिन्दु समाज को प्रगति पथ पर अग्रसर किया।

"हिन्दुत्व का भविष्य" शीर्षक अपने लेख में गांधीजी ने कहा था कि हिन्दुत्व की गति में आज अवरोध उत्पन्न हो गया है, अकर्मण्यता आ गई है तथा इसका विकास मंद हो गया है। इसका एकमात्र कारण है युगों-युगों से कार्यरत रहने की थकान। ज्यों ही यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व पहले से अधिक अलौकिक प्रभा प्रसारित कर विश्व पर छा जायेगा। अरविन्द ने भी ऐसी ही भविष्यवाणी की थी। फ्रान्स के यहूदी भविष्यद्रष्टा नोस्त्रादम की भी ऐसी ही भविष्यवाणी है। अब इन भविष्यवाणियों के सच होने का समय निकट आता प्रतीत होता है।

जिसके घर में वेद नहीं, वह हिन्दू का घर नहीं : चारों वेदों का हिन्दी भाष्य आज ही अपने परिवार लायें

इतिहास की भूमिका

केवल राम मलकानी

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की राज्य सरकारों द्वारा विद्यालय की पाठ्यपुस्तकों में दिए गए कतिपय परिवर्तन आजकल विवाद का विषय बने हुए हैं कुछ बुद्धिजीवियों ने इन परिवर्तनों में सांप्रदायिकता और संकीर्णता के प्रचार-प्रसार की गंध ली है। उनकी यह आलोचना कहाँ तक सारपूर्ण है और कहाँ तक पूर्वाग्रहों से ग्रसित है यह विवेचना श्री मलकानी के इस लेख में प्रस्तुत है। श्री मलकानी द्वारा प्रस्तुत विवेचना पठनीय और मननीय है। — सम्पादक

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में विद्यालयीन पाठ्यपुस्तकों में किए गए कतिपय परिवर्तनों पर काफी समय से टीका टिप्पणियों का दौर चल रहा है। यद्यपि इन टिप्पणियों में आलोचना का स्वर ही प्रबल है, परन्तु कुछ में परिवर्तनों को सराहा भी गया है। जिससे यह चर्चा जीवन्त रूप ले रही है।

यह बात सहज ही स्वीकार्य है कि विद्यालयीन पाठ्यपुस्तकें खास तौर पर इतिहास की पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। वे राष्ट्रीय मानस की निर्मिति में बुनियादी तौर पर सहायक होती हैं। ब्रिटिशों ने इतिहास पुस्तकों को अपने मन में साम्राज्यवादी हित को बसाकर तैयार करायी थीं। उदाहरणतः एक सौ वर्ष पूर्व तक विक्रमादित्य भारत के हर घर में एक चिरपरिचित नाम था। अशोक प्रायः अपरिचित नाम था। परन्तु इतिहास पुस्तकों में विक्रमादित्य को पूर्णतः छोड़ दिया गया और अशोक की प्रशंसा में धरती-आकाश के कुलावे मिला दिए गए। कारण भी स्पष्ट था। विक्रमादित्य ने शक आक्रान्ताओं को परास्त कर पलायन करने पर बाध्य किया था और अशोक अहिंसक हो गए थे। एक अहिंसक भारतीय शासक ब्रिटिश शासकों के लिए ऐसे किसी भी भारतीय शासक की तुलना में अनुकूल बैठता था। जिसने विदेशियों को पलायन करने पर विवश कर दिया हो। लार्ड कर्जन ने स्पष्टतः इस चयनित और अटकलबाजी पर इतिहास को "साम्राज्य का फर्नीचर" बताया था और यह देखकर दुख ही होता है कि स्वतन्त्रता के बाद भी, हमने कांग्रेस के पुराने ढर्रे को जारी रखा और कतिपय कांग्रेस नेता इसमें शामिल किए गए।

ऐसा करना भारतीय इतिहास और भारतीय मानस से न्याय न करने के तुल्य ही था। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में वे सम्भवतः महात्मा गांधी को तो नहीं ही छोड़ सकते थे, परन्तु बाकी के मामले में एक विशेष परिचय पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया। इसमें लाल-बाल-पाल जैसी महान त्रिमूर्ति की भी उपेक्षा कर दी गयी। फिर महान उदारवादी और महान क्रांतिकारियों की चर्चा का तो कोई फायदा ही नहीं था। अतएव उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सरकारों ने इस असंतुलन को ठीक कर एक सही कदम ही उठाया है।

उत्तर प्रदेश ने डा० हेडगेवार पर भी एक पाठ शामिल किया है। डा० हेडगेवार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक थे। वे उन महान नक्षत्रों में से एक थे, जिन्होंने प्रसिद्धि परांगमुखता का ही अवलम्बन किया था। परन्तु राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, भारतीय जनता पार्टी और विश्व हिन्दू परिषद के उस स्फूर्तिदाता के बारे में नहीं जानने से राष्ट्रीय मानस एक सीमा तक निर्धन ही रहेगा।

राष्ट्रीय मानस को कांग्रेस ने जो कुछ भी किया उस सभी को बिना नू-नुचुर किए स्वीकार्य कर लेना भी तो उचित नहीं है। उदाहरणतः स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में खिलाफत आंदोलन को एक ऐसे मंथन के रूप में प्रस्तुत किया गया है कि जिसने हिन्दू-मुसलमानों को एकजुट किया था। परन्तु तथ्य यह है कि इस मंथन आंदोलन ने अमृत की अपेक्षा विश्व ही अधिक प्रस्तुत किया था इसने मुत्ताओं को रातों-रात मुस्लिम राजनीतिक नेताओं में बदल दिया था और इसकी परिणति व्यापक

हिन्दू-मुस्लिम हिंसा के रूप में हुई थी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अनेक ने इसमें अखिल आफत के दर्शन किए थे। वस्तुतः खिलाफत आन्दोलन ने ही विभाजन का बीजारोपण किया था। खिलाफत के बारे में किसी भी पाठ में उसके लाभ और हानि दोनों का ही उल्लेख होना चाहिए और यह भी कि इससे लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक हुई थी।

न किसी को इस बात पर ही आश्चर्य होना चाहिए कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परिवार और भारत के लोग शिवाजी, राणा प्रताप और गुरु गोविन्द सिंह को महत्व प्रदान करते हैं। वे महापुरुष जन आकांक्षा के प्रतीक थे। उन्होंने सत्ताधीशों की राज्य सत्ता से लोहा लिया था। उसी कारण से हम वायसरायों की अपेक्षा स्वतन्त्रता आंदोलन के नेताओं को अधिक महत्व देते हैं।

लोगों को विभाजित करने के लिए अंग्रेज ने अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे। दक्षिण और उत्तर में भेदभाव पैदा करने के लिए आर्यों के आक्रमण की बात का अविष्कार किया गया था। हालांकि १८५७ में हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों से लोहा लिया था। "मुस्लिम" काल का इतिहास दोनों समाजों को विभाजित करने के लिए एक ढंग अपनाकर लिखा गया। तब तक मध्य एशियाई आक्रान्ताओं को भारत में 'तुरुस्क' अथवा तुर्कों के तौर पर जाना जाता था! अंग्रेजों ने उनके समाज को 'मुस्लिम काल' की संज्ञा दे दी और स्थानीय मुसलमानों और हमलावरों के बीच एक जुटता का भाव सरसाया। (उसी मापदंड के आधार पर ब्रिटिश शासन को 'ईसाई काल' कहा जाना चाहिए था)

उन्होंने कभी एक पक्ष का तो कभी दूसरे का समर्थन कर इस विभाजन को और अधिक सुनिश्चित किया। मुसलमानों के लिए प्रथक निर्वाचक मंडल, आरक्षण और अधिमान की व्यवस्था करके भी विभाजन को ही पुष्ट किया गया।

स्कूली इतिहास में पाठ्यक्रम की भूलों को सुधारने के लिए भी कोई कदम नहीं उठाया गया।

उदाहरणतः हमारे बच्चों को यही सिखाया जाता रहा कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया था। अब यह पर्याप्त सत्य है कि लोगों का आना जाना इतिहास का एक प्रवाह बना रहा है। भारत के लोग आते रहे हैं और भारत से बाहर भी जाते रहे हैं। परन्तु इस बात की कोई साहित्यिक, पुरातत्वीय अथवा अन्य कोई यहाँ तक कि लोकगाथाओं के रूप में भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि 'आर्य आक्रमण' हुआ था और कि देश की रौंद कर उसे एक नयी शकल दे दी गयी थी। सिंधु घाटी सभ्यता को आर्यों के पहले की बताया गया। परन्तु यह सभ्यता भी पूर्णतः भारतीय है। "आर्य" शब्द का प्रयोग 'भद्रजन' के रूप में किया जाता था। किसी जाति, या श्रीमंत आदि के लिए नहीं। जब सीता राम को 'हे आर्य' कह कर सम्बोधित करती थी तो उससे तात्पर्य यह नहीं होता था कि राम उनकी जाति से अलग किसी जाति के थे। वास्तव में विशेषज्ञों का मत यह है कि 'आर्य' किसी जाति का नाम नहीं है। यह तो एक भाषायी वर्ग के लिए सम्बोधन है। उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय जातिवादियों ने ही स्वयं को अश्वेतों, गेहुआ रंग वालों और पीतवर्णी लोगों और यहूदी जन से श्रेष्ठ जताने के लिए ही जातीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। परन्तु हमारी स्कूली पाठ्यपुस्तकों में आंख मूंदकर 'भारत पर आर्यों के आक्रमण' के पाठ पढ़ाकर कषधर्मों को 'औचित्य' जुटाकर भारतीय समाज के विष घोला जाता रहा है।

इन्हीं पाठ्य पुस्तकों में हमारे बालकों को यह ब्रिटिश दृष्टिकोण पढ़ाया जाता है कि सिकन्दर ने पोरसा को पराजित किया था और इस देश के पश्चिमोत्तर अंचल पर अधिकार कर लिया था। सिकन्दर की उपलब्धियों को बढ़ा चढ़ाकर पेश करने के पीछे अंग्रेजों का उद्देश्य बड़ा स्पष्ट था। वे हम लोगों पर यह जताना चाहते थे कि "हम पर आक्रान्ता ही सदैव शासन करते आए हैं। फिर चाहे वे हमलावर आर्य ही क्यों नहीं रहे हैं। या फिर वह सिकन्दर हो या तुर्क। यह सब कुछ भारत पर ब्रिटिश शासक का औचित्य प्रतिपादित करने के लिए किया गया। परन्तु हम बिना विचारे ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी

प्रचार को अपनी पुस्तकों में दोहराते रहे हैं। तथ्य यह है कि किसी भी भारतीय रिकार्ड में सिकन्दर का उल्लेख नहीं है, ही इस बात का द्योतक है। उसे सीमा पर लूटपाट करने वालों में से एक ही माना गया था।

कुछ मित्रों ने 'हिन्दू विज्ञान' और "वैदिक गणित" का भी उपहास उड़ाया है। परन्तु तथ्य यह है कि प्राचीन भारत ने इन क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति की थी। दिल्ली में कुतुब मीनार के समीप स्थित लोह स्तम्भ रसायन के क्षेत्र में भारतीय प्रगति का प्रमाण है। 'शून्य' की कल्पना भारत में ही विकसित हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोप में भारतीय वस्त्रों का ही बोलबाला था। ब्रिटिश वस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने के लिए ही ढाका के बुनकरों के हाथ काटे गए थे और उच्च शुल्कों की प्राचीरें खड़ी की गयी थीं। बौद्ध मत में शवों की विच्छेदन क्रिया बंद किए जाने से पूर्व भारत में शल्य क्रिया का भी अत्यधिक विकास हुआ था। स्वस्थ और दीर्घायु के क्षेत्र में तो हमारी आयुर्वेद और सिद्ध प्रणालियों की आज भी धाक है। नेपोलियन के युद्धों तक इंग्लैंड के विशालतम और श्रेष्ठतम जहाज भारत में ही बनते थे। पिथागोरा के नाम से जो थ्योरम आज जानी जाति है उसका निरूपण बहुत समय पूर्व बोधायन ने ही कर दिया था। प्राचीन भारत के बारे में इन सभी तथा अन्य अनेक तथ्यों का उल्लेख भारत सरकार की ओर से प्रगति मैदान में

आयोजित विज्ञान प्रदर्शनी में भी हुआ है। उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र अपराध यह है कि उसने इन चीजों को संग्रहालयों से बाहर लाकर विद्यालयों की कक्षाओं में रख दिया है।

यह भी अपरिहार्य है कि "शुद्ध करने" की प्रक्रिया में कुछ "अति शुद्ध" जैसी बात भी हो जाती है। उदाहरणतः यह कहना गलत होगा कि मात्र औरंगजेब ही नहीं अपितु अकबर भी महान नहीं था। इसी तरह जहाँ यह तथ्य है कि बावरी मस्जिद की जगह एक मंदिर का जगह हुआ था, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि क्या पुराने मंदिर को बाबर के लैपिडनेट मीर बाकी ने नष्ट किया था या किसी और ने। इसी तरह इस बात पर भी दो राय हो सकती हैं कि बेगम हजरत महल पार्क का नाम लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के नाम पर रखा जाय या नहीं। परन्तु यहाँ यह तर्क भी दिया जा सकता है कि यदि कर्जन रोड को कस्तूरबा मार्ग, क्वीन विक्टोरिया रोड को डा० राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, क्वीन मेरी रोड को पंडित पंत मार्ग और तुगलक रोड के एक हिस्से को अरविन्द मार्ग का नाम दिया जा सकता है, तो लखनऊ के पार्क का नाम उर्मिला के नाम पर क्यों नहीं रखा जा सकता। जो कुछ भी हो आखिर दिल्ली में हम औरंगजेब रोड यह नाम क्यों कायम रखे हुए हैं क्या इसका नाम दारा शिकोह जैसे महापुरुष के नाम पर नहीं रखा जा सकता।

अनेक छात्र-छात्राएं पुरस्कृत

नई दिल्ली, भारत के विभिन्न भागों में विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित गीता पाठ प्रतियोगिताओं के तीसरे चरण में स्कूल वर्ष में राजस्थान के रवि कुन्तल को प्रथम और मध्य-प्रदेश की कुमारी शिखा जैन को द्वितीय, तथा कॉलेज वर्ग में उत्तर-प्रदेश की कुमारी प्रिया गुप्ता को प्रथम तथा कर्नाटक की कुमारी सौम्यलता को द्वितीय घोषित किया गया।

तीसरे चरण की प्रतियोगिता वसन्त विहार, नई दिल्ली में उत्तर-प्रदेश समाज विद्यालय में सम्पन्न हुई।

विश्व हिन्दू परिषद ने राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम आने वाले प्रतियोगियों को बैकाक-सिंगापुर जाने-आने के टिकट देने की घोषणा की। द्वितीय स्थान प्राप्त करने वालों को दो-दो हजार रूपए नकद दिए गए। राज्य स्तर पर प्रथम आने की पुरस्कार राशि एक-एक हजार रुपये की इसी अवसर पर वितरित की गई।

पुरस्कारों का वितरण संसद-सदस्य स्वामी चिन्मयानन्द जी ने किया तथा गीता के महत्व पर प्रकाश डाला। विश्व हिन्दू परिषद के संयुक्त महामंत्री आचार्य गिरिराज किशोर जी ने भी बालकों को आशीर्वाद दिया। संमारोह के अध्यक्ष श्री मोरोपंत जी पिंगले ने कहा कि अधिकांश लोग जीवन के अन्तिम चरण में गीता की ओर झुकते हैं जबकि आवश्यकता है गीता के संदेश को जीवन के प्रारम्भ में अपनाने की।

आज का मैक्सिको-बीते युग का मक्षिका

-डा० श्याम सिंह शशि

डा० श्याम सिंह शशि देश के सुविख्यात मानव शास्त्री हैं तो काब्य के क्षेत्र में भी वह एक उपलब्ध प्रतिष्ठित नाम है। लगभग डेढ़ सौ पुस्तकों के लेखक डा० शशि प्रकाशन निदेशालय के निदेशक हैं। हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य में विपुल योगदान देने वाले श्री शशि 'पद्म श्री' से भी अलंकृत हुए हैं। शोधार्थी के रूप में नए-नए क्षितिजों में कीर्तिमान स्थापित कर चुके डा० श्याम सिंह शशि ने अपनी मैक्सिको यात्रा के दौरान वहाँ स्थित प्राचीन भक्तों और मंदिरों का भी गहन अध्ययन किया था। उन्हीं के संबंध में प्रस्तुत है उनका यह विवरण :-

--संपादक

मन्वन्तरी जल प्लावन से कितनी बार सभ्यताओं का विकास हुआ तथा कितनी संस्कृतियाँ उजड़ीं, कहना असंभव है। प्रागैतिहासिक स्रोत अथवा पुरातत्व शास्त्री इस संदर्भ में कुछ नया दे सकते हैं। आज का जल डमरू मध्य हो सकता है, कभी हिमाच्छादित रहता हो। अलास्का के मार्ग से लोग पाताल लोक पहुंचे हो। सम्भव है कि भारत से लेकर मिस्र, अफ्रीका होते हुए दक्षिण अमरीका तक कभी थल मार्ग रहा हो। अन्यथा दैत्यराज बलि विष्णु के पांव से दबकर सीधे पाताल लोक कैसे पहुंच जाते? रावण यदि लंका नरेश था तो अहिरावण अमरीका का सम्राट रहा होगा। अहि का अर्थ सर्प भी होता है। उन दिनों नागजाति सम्पूर्ण विश्व में फैली थी। दक्षिण अमरीका में वे बड़ी संख्या में रहते होंगे। मान्यता है कि हिन्दू सधवाओं ने सिन्दूर की प्रथा नाग सुन्दरियों से ही ली थी। यही कारण है कि मैक्सिको तथा लेटिन देशों में आज भी सर्पाकार आकृतियों के शिला चित्र देखे जा सकते हैं। इन देशों में सर्पपूजा के साथ सूर्य की उपासना भी प्रचलित थी। इसलिए वहाँ सूर्य मंदिरों का निर्माण भी हुआ था।

मैक्सिको में सूर्य और चन्द्र मंदिर के अतिरिक्त बहुत बड़ा आकर्षण एन्ट्रोपोलिया, यानी मानव विज्ञान संग्रहालय। दूर-दूर से शोधार्थी और मानव-विज्ञानी

उसे देखने आते हैं। यहाँ मय, अज्देक, हाणी, इंका नवाहो, पोमों, युमा, पिमा, मिवोक, हावीसुपाई, रैड इंडियन तथा अन्य जन-जातियों के पुराने अस्त्र-शस्त्र, उपयोगी वस्तुएं तथा वस्त्र आदि के रूप में सांस्कृतिक धरोहर देखी जा सकती है।

मैक्सिको संस्कृत के मक्षिका शब्द से बना है। मक्षिका यहाँ सोने और आदि के रूप में भारी मात्रा में मिलती है। 'पेरू' को संस्कृत में 'सूर्य' कहा जाता है। वहाँ भी सोने चांदी की मनिका पाई जाती है। वहाँ भी सूर्य मंदिर मिलते हैं। पुराणों के अनुसार सूर्य मंदिरों का निर्माण कृष्ण के पुत्र साम्ब ने शुरू किया था। उसने कोणार्क का सूर्य मंदिर बनवाया था इसी प्रकार मुलतान तथा कई स्थानों पर सूर्य मंदिर बनवाए गए। जिनमें से अनेक के अवशेष अब भी मिलते हैं। हाल ही के अध्ययन से वीरा सूर्य मंदिरों का पता चला है। उड़ीसा के कोणार्क तथा कश्मीर के मार्टंड मंदिर के अतिरिक्त गुजरात, राजस्थान, (जैसलमेर), बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों में सूर्य मंदिर विद्यमान हैं। भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय कोणार्क मंदिर के निर्माण का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा। कोणार्क का मंदिर सूर्य को समर्पित तथा बारह अश्वों के रथ पर अवस्थित है। ये अश्व बारह महीनों अर्थात् पूरे एक वर्ष के प्रतीक हैं। इस मंदिर में अश्व, सिंह तथा हाथी विभिन्न मुद्राओं में

अंकित दिखाई देते हैं। देवी देवताओं की अनेक मूर्तियां मंदिर में हैं।

पुराण के अनुसार भगवान श्री कृष्ण के पुत्र साम्ब को कुष्ट हो गया तो उन्हें मैत्री वन में तपस्या करने की सलाह दी गई। यह वन कोणार्क मंदिर के स्थान पर था। साम्ब की कठोर तपस्या से उसकी व्याधि दूर हो गई। वह चन्द्र भागा नदी पर गया और ज्योंही उसने डुबकी लगाई उसका शरीर कुन्दन की तरह सुन्दर हो गया। उसे सूर्य की प्रतिमा मिली, जिसे वह अपने साथ ले आया। बाद में उसी स्थान पर उसकी स्थापना कर दी गई। यह मंदिर सुरेन्द्र केसरी ने बनाया ऐसा उल्लेख उड़ीसा के इतिहास में मिलता है। किंतु निश्चित तिथि की पुष्टि नहीं होती। केवल इतना पता चलता है कि केसरी राजवंश का ११०० ई० पू० में शासन था। अबुल फजल ने आयेने अकबरी में इस मंदिर की बड़ी प्रशंसा की है। अबुल फजल अकबर का सम सामयिक था।

वेद की ऋचाओं में सूर्य का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। यो मित्र, मिहिर, सविता आदि शब्द भी सूर्य के पर्याय हैं। जापान, रूस, कोरिया, इंग्लैंड में भी सूर्य मंदिर अस्तित्व में रहे हैं। मैक्सिको के सूर्य मंदिर के साथ ही क्षत्रियों के सूर्यवंश पर भी दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा। राजस्थान के इतिहास तथा प्रीसकाट

का साहित्य भी सूर्य वंशावली पर प्रकाश डालते हैं। इतिहासकार पोकोव के अनुसार भारतीय राजाओं ने सूर्य ध्वज के तले सीरिया और फलिस्तीन उपनिवेशों की स्थापना की थी। ग्रीक क्षेत्र को अल-गुपतिया यानी गोपती कहते थे। यहाँ के शासक सूर्यवंशी थे।

विश्व का प्राचीनतम सूर्यनगर त्येतिवाकन है। यह स्थान त्योते ओतिहवाकान के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह राष्ट्र कभी ज्योति वाहन अथवा ज्योति स्थान रहा होगा। मेसो अमरीकी संस्कृति के हिस्पानिक पूर्व काल का समय ५५०० से २०,००० वर्ष ईशा पूर्व तक माना जाता है। ईसा से केवल १०० वर्ष पूर्व की सूर्य पूजा का प्रामाणिक दस्तावेज है। इस स्थान को ज्योति स्थान अथवा ज्योति नगर की संज्ञा से सम्बोधित करेंगे। यहाँ सूर्य मंदिर की स्थापना ईसा से १०० वर्ष पूर्व हुई थी। इसी क्षेत्र में चन्द्र मंदिर भी इन्हीं दिनों में बना था।

ज्योति स्थान ने नगर का रूप लिया और २० वर्ग मील में फैल गया। उन दिनों नगर निवासियों की संख्या ५०,००० से ऊपर थी। ईरान से ४०० वर्ष पूर्व यहाँ छोटे छोटे ग्राम थे, जो बाद में दस हजार की आबादी वाले नगरों में बदल गए। यहाँ कभी सूर्य पूजा महोत्सव होता था। चाँदी-सोने का खानों का पता लगने पर यहाँ लोग दूर-दूर से आकर बसते गए। आज मैक्सिको विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाले नगरों में हैं। वह नगर तब धार्मिक केन्द्र था।

मुम्बई में महर्षि निवाण दिवस मनाया गया

मुम्बई की समस्त आर्य समाजों की ओर से आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वाधान में आर्य समाज मन्दिर सात्ताकुज (प०) में महर्षि दयानन्द सरस्वती का ११०वां निर्वाण दिवस मनाया गया। समारोह की अध्यक्षता आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के प्रधान श्री ओंकारनाथ आर्य ने की।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में खादी ग्रामोद्योग कमीशन के अध्यक्ष डा० यशवीर सिंह डा० त्रिपाठी अध्यक्ष - हिन्दी साहित्य अकादमी महाराष्ट्र एवं पूर्व राज्यमंत्री, डा. सोमदेव जी शास्त्री, श्री प्रकाशचन्द जी त्यागी-अध्यक्ष संस्कृत विभाग भारतीय विद्या भवन, कैप्टन देवरल आर्य, श्रीमती लज्जारानी गोयले ने महर्षि दयानन्द सरस्वती को अपनी श्रद्धांजली अर्पित की।

मुख्य अतिथि डा० यशवीर सिंह जी ने कहा कि स्वदेशी ही हमारा लक्ष्य है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस देश को स्वदेशी का पाठ पढ़ाया, स्वतन्त्रता का बिगुल बजाया और राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता का सन्देश दिया।

विशेष अतिथि श्री रामनोहर त्रिपाठी पूर्व राज्य मंत्री ने कहा आजका युवक समाज धर्म से दूर जा रहा है। उसे यज्ञ के प्रति कोई रूचि नहीं है संध्या वन्दन उसे अच्छा नहीं लगता इसी कारण विश्व में चारों ओर अशान्ति का वातावरण है। जहाँ से धर्म बला जाता है वहाँ अशान्ति का साम्राज्य हो जाता है। आज देश की यही परिस्थिति है। श्री प्रकाशचन्द जी त्यागी अध्यक्ष संस्कृत विभाग ने कहा महर्षि दयानन्द किसी एक व्यक्ति के कल्याण की बात नहीं करते थे। उन्होंने तो संसार के कल्याण की बात कही और समाज की स्थापना करते हुए आर्य समाज के नियमों में लिखा संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। स्वामी जी ने ही यह सन्देश दिया कि वेद ज्ञान किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं है यह भगवान की वाणी है इस पर सबका समाज अधिकार है। इसे सब पढ़ सकते हैं। इसी लिए उन्होंने जन्मत जाति प्रथा का विरोध किया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री ओंकारनाथ जी आर्य ने अपने भाषण में कहा। आर्य समाज का इतिहास गौरवशाली है महर्षि दयानन्द का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था स्वामी जी ने अपना सर्वस्व प्रदान कर संसार का कल्याण किया। आर्य समाज के उद्देश्य ही इस देश का संविधान बने हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम स्वदेशी भाषा, स्त्री शिक्षा, अफ़सूतद्वारा, बाल विवाह, विधवा उद्धार के कार्यक्रम इस देश के सामने रखे। वेद ज्ञान को ही प्रमाण माना।

‘नारी स्वतन्त्रता की सीमा’

-नीलम लूथरा

पाश्चात्य नीर स्वतंत्रता का आन्दोलन आज भारतीय नारी के लिए लक्ष्यहीन, दिगभ्रमित मुक्ति की अनुकृति और विकृति बनकर रह गया है। इस विकृति से भारतीय नारी को बचना होगा। अपनी विवेकपूर्ण युक्ति से उसे अपनी स्वतंत्रता की सीमा में रहकर रचनात्मक उपलब्धियां प्राप्त करनी होंगी।

स्वतंत्रता व्यक्ति के विकास की पहली प्रस्थापना है। नारी की स्वतंत्रता भी सामाजिक विकास की पहली अपेक्षा है। जहां स्त्री दमन के दुश्चक्र से दलित होकर शोषण का साधन बन जाय वहां परिवारिक और सामाजिक गतिरोध की स्थिति सम्भावित है और एक प्रकार से भारतीय समाज का सामाजिक जीवन न्यूनाधिक मात्रा में इस गतिरोध का शिकार अवश्य हुआ है। क्योंकि सदियों से स्त्री को सामाजिक कारागार का बन्दी बनाकर रखा गया है। शिक्षा, ज्ञान, अभिव्यक्ति और व्यक्तित्व के विकास के मार्ग स्त्री के लिए अवरुद्ध रहे हैं। और अभी तक वह पुरुष की सम्पत्ति एवं विलास की सामग्री बनकर रहती आई है।

किन्तु आज नारी स्वतन्त्र है और सदियों से स्वतंत्र जीवन जी रही है। सन् १९७५ में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष भी मनाया गया। इस युग में नारी स्वतंत्रता का विश्वव्यापी महिला आन्दोलन अपने आप में एक विशिष्ट विषय बन गया है, ऐसी स्थिति में यह प्रश्न भी जनमानस को आन्दोलित कर रहा है कि नारी स्वतंत्रता की सीमा कहां तक होनी चाहिए? जहां तक भारतीय महिलाओं की स्वतंत्रता का प्रश्न है वह तो आजादी के तुरन्त बाद उन्हें पुरुषों के समान सब अधिकार प्राप्त हो गये थे। यह सही है कि पिछला वर्ष शताब्दियों से नारी को सामाजिक न्याय नहीं मिला, समाज द्वारा समानता के अधिकार नहीं मिले और बौद्धिक विकास के अवसर उनसे छीन लिए गये। लेकिन आज महिलाएं राष्ट्र समाज की उत्तरदायी नागरिक हैं। उनके कर्तव्य एवं अधिकार पुरुषों के कर्तव्य तथा अधिकारों से न्यून नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में भी पुरुषों के समान नारी का स्थान है स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय संविधान ने नारी को मताधिकार ही नहीं, नागरिकता के सभी अधिकार

प्रदान किये हैं। उत्तराधिकार, दहेज, विवाह विच्छेद सम्बन्धी विधान बना जाने से उनके वैधानिक अधिकारों में वृद्धि हुई है। हां, यह सच है कि उनके अधिकारों में वैधानिक रूप से जो परिवर्तन हुए हैं उसके अनुसार समाज में इतना परिवर्तन नहीं हुआ। हालांकि भारतीय महिलाएं स्वतंत्रता के उपरान्त पुरुषों के समान पूर्ण स्वतंत्र हैं फिर भी वे अपने आप को स्वतंत्र नहीं मानती और पश्चिम की नकल में अपने अधिकारों के प्रति सचेत न होने के कारण अधिकारों के लिए आन्दोलन चलाकर अपनी स्वतंत्रता की सीमा को भूल रही है। लेकिन यह आन्दोलन नारी स्वतंत्रता के लिए दिगभ्रम है। पश्चिमी देशों में ‘लिब’ सम्प्रदाय ने जो नारे दिये हैं वे अधिकांश सतही, प्रदानात्मक, अतिवादी और अव्यवाहारिक हैं। उनके नारों में एक खण्डित और विघटित नारी की तस्वीर उभरती है और सदियों से मानसिक दासता से ग्रस्त हमारा देश अब भी पश्चिम की हवा को प्राण वायु मान कर अपनी सांसों में भर लेना चाहता है। यह दशा आज भारतीय नारी की भी है। वह पश्चिम की नकल में वहां की स्त्रियों की तरह अपनी स्वतंत्रता की सीमा को लांघना चाहती है। वह पुरुषों की भांति रात देर गये घर से बाहर रहने की मांग करती है और पुरुषों के समान ऐसे पदों पर आसीन होना चाहती है जो उन्हें अकेले कई दिन घर से बाहर रहने को बाध्य करे। मगर वे भूल जाती हैं कि उनकी स्वयं की शारीरिक रचना पुरुषों से भिन्न होने कारण उनके स्वातंत्र्य की सीमा है। स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि नारी अपनी शक्तियों को भूल जाए और अपने नैतिक नैसर्गिक गुणों को भूल कर पश्चिम की नकल में पति-पत्नी अलग-अलग जिन्दगी बिताएं। अर्थ की स्वतंत्रता परिवारों को जोड़ने के लिए है न कि परिवार को तोड़ने के लिए लेकिन आज जबकि नारी पुरुषों के समान, प्रत्येक व्यवसाय में कार्य करने लगी है तो अपनी

कोमल रहस्यमय और विकासशील पक्ष का पर्याय है। पत्नी के रूप में भी नारी को भारत में पवित्र और धार्मिक माना जाता है। नारी ही घर की बुनियाद है, इसके बिना परिवार का अस्तित्व ही नहीं।

सभ्यता के विकास में भी नारी का महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ नारी को अपनी चारित्रिक एवं मानसिक शक्तियों से समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानी है वहाँ वह उत्सर्ग, त्याग, दया, क्षमा, ममता और सौन्दर्य की प्रतीक भी है। नारी का ही दूसरा नाम श्रद्धा है। यह नारी की शक्ति ही है कि वह पुरुष पर अगाध आस्था रखते हुए प्रेम की धार पर जीवन के पथ को सुगम, समतल और सुखदायी करके उसे सुन्दर बनाती है। इसी से उसे सर्वमंगले, देवी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इन्हीं भिन्न शक्तियों के कारण नारी की स्वतंत्रता की सीमा भी होनी चाहिए जो उसे सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्रदान करे। मगर कुछ महिलाएं अपनी इन शक्तियों को भूलकर आज भी स्वतंत्रता का दम भरते हुए यह कहती फिरती हैं कि परिवार एक जेल है, हम पुरुषों की दासी नहीं हैं

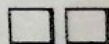
हम चारदिवारी में बन्द नहीं रह सकती इत्यादि। लेकिन यह 'लिब' नारी मुक्ति का अमर्यादित पहलू है किन्तु क्या 'लिब' की इन उखड़ी-बिखरी बातों से किसी सम्पूर्ण संतुलित समाज दर्शन की झलक भी हमें मिलती है? 'लिम्ब' का लक्ष्य क्या है, समाज दर्शन क्या है? नारी स्वतंत्रता का अर्थ तो कि वह भी आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो, वह पुरुष पर आश्रित रह प्रताड़ित न हो और उसका परिवार अर्थ-विषमता एवं आर्थिक निर्भरता के कारण टूटे नहीं। लेकिन आज स्त्री पुरुषों के समान स्वतंत्रता का गलत अर्थ लगाकर परिवारों को जाड़ने की उपेक्षा तोड़ने में मदद कर रही है और पश्चिम का यह उधार लिया हुआ आन्दोलन बिल्कुल बेमानी लगता है। इसका कोई तालमेल हमारे समाज की वस्तु स्थिति से और समस्याओं से नहीं है। नारी स्वतंत्रता के इस उग्रपंथी चिन्तन में वर्ग संघर्ष का स्वर है अलगाववाद का उपेक्षा है, क्रान्ति का उन्माद है किन्तु इसमें कोई हर्ज नहीं है।

नारी स्वतंत्रता की एक सीमा होनी चाहिए न कि स्वतंत्रता की प्रयोजना पुरुष के साथ ऐतिहासिक प्रतिशोध या उनके प्रति संचित आक्रोशकी अभिव्यक्ति से सिद्ध नहीं होगा। स्वतंत्रता की सीमा वहीं तक है, जहाँ तक वह पुरुष और स्त्री के सनातन सम्बन्धों को सरस, सौष्ठव और नया निखार दे सके। स्वतंत्रता की पहली शर्त है मर्यादा, संयम एवं परस्पर सौजन्य। इसके बिना नारी स्वतंत्र नहीं हो सकती। स्वतंत्रता और मर्यादा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

अमर्यादित स्वतंत्रता एक विक्षिप्त कल्पना है। नारी स्वतंत्रता का अर्थ नहीं कि वे वर्ग संघर्ष के दांवपेंच में जुट जाएं, या पुरुषों से विमुख होकर किनारा कर लें। नारी स्वतंत्रता पुरुष और स्त्री के बीच एक अभेद्य दीवार का व्यवधान खड़ा कर देने का नाम नहीं है।

इसलिए स्वतंत्रता की सीमा हो और दोनों के सहयोग और सह अस्तित्व में स्वतंत्रता का समावेश हो तभी एक व्यवहारिक और न्यायपूर्ण स्थिति स्थापित हो सकती है। नारी स्वतंत्रता वह नहीं है जो उसके व्यक्तित्व को बिखेर दे, उसे निखरने का अवसर न दे। हां, नारी स्वतंत्रता के लिए उसे निर्भय होना आवश्यक है, उसकी स्वतंत्रता और समता की सुरक्षा भी जरूरी है। उसकी कानूनी, सामाजिक और आर्थिक नियोगताओं विषमताओं को निरस्त करना जरूरी है। न कि उसकी स्वतंत्रता के उद्घोष के लिए मादक द्रव्यों का सेवन, उन्मुक्तगीत और मुक्त काम, मुक्त भ्रमण के सहारे की अपेक्षा है।

पाश्चात्य नारी स्वतंत्रता का आन्दोलन आज भारतीय नारी के लिए लक्ष्यहीन, दिशा भ्रमित मुक्ति की अनुकृति और विकृति बनकर रह गया है। इस विकृति से भारतीय नारी को बचना होगा। अपनी विवेकपूर्ण युक्ति से उसे अपनी स्वतंत्रता की सीमा में रहकर रचनात्मक उपलब्धियां प्राप्त करनी होंगी।



घटना उस समय की है जब हमारा देश भारत गुलाम था, भारत पर अंग्रेजों का शासन था। भारतीय जनता अंग्रेजों के अत्याचारों से काफी परेशान हो चुकी थी, और निरन्तर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष चल रहे थे। लेकिन अंग्रेजों के अत्याचार लगातार बढ़ते जा रहे थे। अपनी कुटिल हरकतों से अंग्रेजों ने यहां की जनता को, परेशान कर रखा था। यहां के राजा महाराजा अंग्रेजों से प्रभावित होकर उनका हुक्म बजाते और अपने को धन्य समझते थे। कुछ राजपूत राजा-महाराजा अंग्रेजों के विरुद्ध थे।

भारत आजाद नहीं था। परतंत्रता के अंधेरे में जी रहा था। उस समय अंग्रेज एक प्रकार से पूरे, हिन्दुस्तान के मालिक थे और अनगिनत राजा महाराजा अंग्रेजों के कहे अनुसार जनता पर शासन कर रहे थे। ये राजा अंग्रेजों के दोस्त अथवा पिटू हुआ करते थे और जनता के हितों की जगह अंग्रेजों के हितों का ज्यादा ख्याल रखा करते थे, किन्तु देशभक्त नेताओं और वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मी बाई आदि की प्रेरणा से भारत की जनता इन गुलाम अंग्रेजों के दोस्त गद्दार राजाओं से घृणा करने लगी थी। यहां तक कि अंग्रेजों के साथ-साथ इन राजाओं के खिलाफ भी बगावत पर उतर आयी थी। एक ऐसी ही बगावत उड़ीसा में भी हुई थी।

उड़ीसा के डेंकानल जिले में एक गांव है-अनगुल। वहां का राजा अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली था। इसलिए वहां की जनता उसके बहुत खिलाफ थी। अपने राजा के विरोध में वहां की जनता संगठित होने लगी। जनता की यह मांग थी कि प्रजा को स्वतंत्रता दी जाय। प्रजा को उसके हक देने के लिए प्रजा परिषद की स्थापना की जानी चाहिए। किन्तु राजा जानता था। कि ऐसा करने पर प्रजा को व्यापक अधिकार मिल जाएंगे और उसके लिए शासन करना कठिन हो जाएगा। अंग्रेज भी पसन्द नहीं करेंगे।

जनता के काफी जोर डालने पर भी राजा ने उनकी बात नहीं मानी। इस पर क्रुद्ध जनता ने आन्दोलन

छेड़ दिया। राजा अपने आका अंग्रेजों के पास पहुंचा और सहायता मांगी। भारतीय जनता को कुचलने के लिए सलाह ली। चालाक अंग्रेज तो यह चाहते ही थे। उन्होंने राजा को आश्वासन दिया कि वे आन्दोलनकारियों के विरुद्ध लड़ने और उन्हें कुचलने में राजा को पूरी सहायता देंगे। राजा खुश हो गया। उसने अंग्रेजों को सलाम बजाया और अंग्रेजों ने राजा के सामने एक शर्त रख दी कि आन्दोलन की समाप्ति के बाद उड़ीसा राज्य का पूरा संभाल, अंग्रेजों के हाथ में देना पड़ेगा। राजा ने अंग्रेजों की यह शर्त मान ली।

मौका अच्छा था। अब अंग्रेजों को आन्दोलनकारियों से निबटना था और उनके पास फौज व हथियारों की कोई कमी नहीं थी। बस फिर क्या था--देखते ही देखते अंग्रेजी फौज की एक बड़ी टुकड़ी डेंकानल पहुंच गयी। वहां से फौजी टुकड़ी की अनगुल जाना था, रास्ते में एक खतरनाक नदी पड़ती थी। नदी को किसी तरह पार करने के अलावा अंग्रेजों के पास कोई उपाय नहीं था। यातायात का विकास आज की तरह तो तब था नहीं।

आन्दोलन के कारण मल्लाहों का काम मंदा पड़ गया था। अतः नदी पर मल्लाह लोग भी नहीं थे। सिर्फ एक मासूम १२ वर्ष का बालक एक नाव पर जरूर बैठा हुआ नजर आया। वह बालक अपनी नाव पर बैठा नदी पार जाने वालों की बेसब्री से बांट जोह रहा था। अंग्रेजों

ने देखा। अंग्रेजों को अब उसी का सहारा था। उसे देखते ही एक अंग्रेज ने कड़क कर पूछा-- "क्यों वे, कहाँ गये हैं सारे मल्लाह?"

"राजा के विरुद्ध आन्दोलन करने?" बालक ने जबाब दिया।

"तेरा क्या नाम है?" अंग्रेज गुस्से से गरजा।

"बाजीराव" बालक ने नाम बताया।

"तू क्यों नहीं गया?"

"कोई तो होना चाहिए यहाँ, जो आने वाले को पार पहुँचा दे?"

"अच्छा तो यह बात है। लगता है तू हमारे लिए ही यहाँ खड़ा है, चल हमको बारी-बारी से उस पार पहुँचा दे"। अंग्रेज के चेहरे पर कुटिल मुस्कान उभरी।

बाजीराव ने कड़ककर कहा,-- "मेरी नाव अंग्रेजों और राजा के लोगों के लिए नहीं है, बल्कि गांव वालों के लिए है।"

सुनकर अपमानित होकर-अंग्रेज कप्तान जोर से चीखा--"खामोश हो बदमाश लड़के! जा हम चाहें तो तुझे अभी ढेर कर दें, मगर तेरी उम्र देखकर हमको तरस आ रहा है। तू चुपचाप पार लगा दे वरना गोली से उड़ा देंगे।"

किन्तु वह वीर बालक उस से मस नहीं हुआ। वह भी जोर से चीखा--"तुम्हें जो करना है करो। लेकिन मैं तुम्हें हरगिज-हरगिज पार नहीं ले जाऊंगा। मैं जानता हूँ कि तुम राजा के कहने पर यहाँ आये हो और गांव वालों पर अत्याचार-खून-खराबा करोगे।

अंग्रेज कप्तान अब आपे से बाहर हो गया था। लेकिन नदी पार करना था। गरज तो अंग्रेजों को ही थी। अतः कप्तान ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया, "देखते क्या हो? तुम लोग नाव पर चढ़ जाओ, अपने को कई टुकड़ियों में बांट लो, पांच सात फेरों में सब पार पहुँच जाएंगे। देखते हैं यह जरा सा छोकरा क्या करता है? यह क्या, इसका तो बाप भी हमें पार पहुँचाएगा।"

अंग्रेज कप्तान के आदेश पर सैनिक पांच टुकड़ियों में बंट गये। बालक बाजीराव आराम से खड़ा देखता रहा। जब पहली टुकड़ी के एक सिपाही ने नाव पर पैर रखना चाहा तो बाजीराव गरज उठा, --'ऐ अंग्रेजों! मैं अभी भी कहता हूँ तुम लोग मान जाओ। मैं तुम्हें किसी भी हालत में नदी पार नहीं कराऊंगा।"

अब तक अंग्रेजों का काफी समय बरबाद हो गया था। अतः अंग्रेज कप्तान के आदेश पर वह सैनिक नाव पर चढ़ गया। लेकिन अभी वह बैठा भी नहीं था कि बुरी तरह चीखकर पानी में गोता खा गया। उसके सिर पर भयानक वार हुआ था। चेहरे पर चारों ओर खून बह रहा था। दरअसल मैं उस अंग्रेज सैनिक के सिर पर बालक बाजीराव ने पूरे जोर से प्रहार किया था। और क्योंकि १२ वर्षीय बालक बाजीराव के पास और कोई हथियार नहीं था। अतः उसने पतवार के एक सिरे को हथियार के बतौर इस्तेमाल करके सैनिक को घायल कर दिया था।

अंग्रेजों ने सपने में भी नहीं सोचा था कि मामूली सा बालक बाजीराव कोई ऐसा कदम उठा सकता है। अतः वे हतप्रभ रह गये। बाजीराव की देशभक्ति देखकर अंग्रेज कप्तान तो गुस्से से मरकर लालपीला उठा। गुस्से में आकर उसने आव देखा न ताव अपनी पिस्तौल से दनादन गोलियाँ दागीं।

गोली सीधे बालक बाजीराव की कनपटी में धंस गयी। एक हृदय विदारक चीख के साथ बाजीराव लड़खड़ा कर पानी में गिर पड़ा उसकी नाव तट छोड़ चुकी थी। वह पानी के हलके बहाव में खुद ही तैर रही थी।

अंग्रेज आश्चर्यचकित थे। उन्हें छोटे से बालक बाजीराव की वीरता पर कुतूहल हो रहा था। बाजीराव के इस करतब की खबर किसी प्रकार गांववालों तक पहुँच गयी। गांव वाले उत्साह और क्रोध से पागल हो उठे। उन्होंने अंग्रेजों और राजा के खिलाफ आन्दोलन को और तेजी से चलाने का फैसला किया।

बालक बाजीराव का यही वलिदान न केवल उड़ीसा प्रांत, बल्कि ढेंकानल के आन्दोलन को मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध हुआ।

हल्दी एवं अदरक की खेती

कैलाशनाथ त्रिपाठी

अदरक तथा हल्दी की विशेष गंध तथा इनके गुणों से मसाला के अतिरिक्त इनका उपयोग औषधि तथा उद्योग में भी किया जाता है।

जलवायु:- इनकी वृद्धि के लिये गर्म-तर जलवायु सर्वोत्तम है। अदरक तथा हल्दी की सफल खेती के लिये बुवाई तथा उगाव के समय कम वर्षा, पौधों के बाढ़ के समय अधिक वर्षा तथा फसल पकने के एक माह पूर्व सूखा वातावरण अधिक उपयुक्त रहता है।

भूमि:- अच्छे जल निकास वाली उर्वर, बलुई दोमट अथवा दोमट भूमि इनकी खेती के लिये सबसे अच्छी सिद्ध हुई है।

खेत की तैयारी:- रवि की फसल समाप्त होने के पश्चात अप्रैल में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके मिट्टी को खूब भुरभुरी बना लेना चाहिये। समतल तथा तैयार खेत को छोटी-छोटी क्यारियों ४ X २ मीटर अथवा ३ X ३ मीटर में विभाजित कर लेना चाहिये। बुवाई मेंड़ बनाकर करनी चाहिये। ६० से ० मीटर चौड़ी १५ से ० मीटर ऊंची मेंड़ होनी चाहिये। एक मेंड़ से दूसरे मेंड़ की दूरी ३० से ० मीटर होनी चाहिये।

खाद एवं उर्वरक:- खेत की मृदा परीक्षण के आधार पर खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करना उचित रहता है। वैसे सामान्यतः खेत की तैयारी के समय बुवाई के २५ दिन पूर्व एक हेक्टर खेत २५ से ३० टन गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट डालकर मिट्टी में मिला देना चाहिये। अन्तिम जुताई के साथ कूड़ों में ८० किलोग्राम फासफोरस, १०० किलोग्राम पोटाश तथा ४० किलोग्राम नत्रजन (सभी तत्व में) प्रति हेक्टर खेत में डालना चाहिये। इसके अतिरिक्त ६० किलोग्राम नत्रजन खड़ी फसल में दो बार भुरकाव करना चाहिये। भरकाव दोपहर के बाद करना उचित रहता है।

जातियां:- अदरक की दो अभ्यागत जातियां रायडीजेनेरो तथा चायना है। रायडीजेनेरो की उपज प्रति हेक्टर २५० से ३०० कुन्तल तथा चायना की उपज १८० से २०० कुन्तल तक है। इन जातियों में अपेक्षाकृत रेशा कम तथा सोठ की तैयारी का प्रतिशत अधिक है। अदरक की देशी जातियों में देशी, पहाड़ी वाइनाद, मानान्योड़ी आदि प्रमुख हैं। इनसे १३० से १६० कुन्तल प्रति हेक्टर उपज मिल जाती है। देशी जातियां अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु पाई गई है।

हल्दी की प्रमुख जातियों में मेडुकर, लोखंडी, वरूआ सागर, मद्रास मंजल, गौतम मुडंगा तथा पडरौना है। मेडुकर तथा लोखंडी जाति से अधिक उपज प्राप्त होती है।

बीज एवं बुवाई:- शुद्ध, स्वस्थ एवं रोगमुक्त गाँठों अथवा केप्टान ०.२% के घोल से कर लेना चाहिये। बुवाई के लिये प्रयुक्त की जाने वाली प्रत्येक गांठ में कम से कम दो आंखें तथा उसका भार २५ ग्राम होना चाहिये। एक हेक्टेयर खेत के लिये १२ से १५ कुन्तल कच्ची गांठें पर्याप्त होती हैं। बुवाई कतार में-कतार से कतार की दूरी ३० से ४० सेंटीमीटर तथा बीज अथवा गांठ से गांठ की दूरी २० सेंटीमीटर रखना चाहिये। बुवाई अप्रैल से १५ जून तक अवश्य कर देना चाहिये। बुवाई के पूर्व यदि गांठों को भीगे हुये टाट या बोरे में २४ घन्टे तक लपेटकर रख दिया जाये तो अंकुरण शीघ्र हो जाता है।

निराई, गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाना:- निराई-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाने का उत्पादन से गहरा सम्बन्ध है। समय-समय पर आवश्यकतानुसार फसल की निराई तथा ३-४ गुड़ाई आवश्यक हैं। गुड़ाई के साथ पौधों पर मिट्टी अवश्य चढ़ा देना चाहिये।

सिंचाई:- वर्षा ऋतु में सिंचाई की विशेष आवश्यकता

नहीं होती। किन्तु अप्रैल से जून तक वर्षा न होने पर चार पांच सिंचाई तथा शीतकाल में १५ दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिये।

खुदाई :- हल्दी एवं अदरक की फसल लगभग ६-१० माह में, जब पत्तियां पीली होकर सूखने लगें, तो खोदने लायक हो जाती हैं। अप्रैल-मई में लगायी गई फसल फरवरी-मार्च तक तैयार हो जाती है। गाँवों की खुदाई के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि गाँवों के न. पायें। फसल खोदने से पूर्व पत्तियों को तने सहित भूमि के ऊपर से काट देना चाहिये।।

उपज :- अदरक तथा हल्दी की उपज पर किस्मों तथा अपनयी गयी। कृषि-विधियों का विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रति हेक्टर हल्दी की औसत उपज २०० से २५० कुन्तल तथा अदरक की अधिक उत्पादक रायडीजेनेरो जैसी किस्म से २५० से ३०० कुन्तल तक होती है।

बीज का संरक्षण :- अगली फसल के लिये लगभग ३-४ माह तक बीज को सुरक्षित रखना पड़ता है। अतएव चयनित स्वस्थ कच्ची गाँवों को ०.२५% घुलनशील सेरेसन के घोल में ३० मिनट डुबोकर छाया में सुखा लेना चाहिये। तत्पश्चात् ऊंची, ठंडी तथा छाया वाली भूमि में २ X २ X १ मीटर माप का गड्ढा खोदकर उसमें गाँवों को भर देना चाहिये। गड्ढे की ऊपरी सतह में हवा के लिये जगह छोड़कर ऊपर से काठ के तख्तों से ढक्कर मिट्टी डाल देना चाहिये।

हल्दी तैयार करना :- फसल की खुदाई से प्राप्त हल्दी कच्ची होती है। इससे व्यापारिक हल्दी लोहे के बर्तन में हल्दी को नरम होने तक उबाल लेते हैं, फिर भर्ती प्रकार सुखाकर उसे मसल देते हैं। १०० कुन्तल कच्ची हल्दी से लगभग २० कुन्तल व्यापारिक हल्दी तैयार होती है।

सोंठ बनाना :- अदरक की चुनी हुई कच्ची गाँवों को साफ धोकर पानी में डाल दिया जाता है। जब छिलका गल जाये तो उसे साफ करके चूने के पानी में डालकर ३० मिनट बाद निकालकर एक सप्ताह तक धूप में सुखा लेते हैं।

अदरक की १०० कुन्तल कच्ची गाँठ से लगभग १८ से २० कुन्तल तक सोंठ तैयारी हो जाती है।

कीट-व्याधि :- हल्दी एवं अदरक पर मुख्य रूप से थ्रिप्स (गुजिया) तथा तनाछेदक कीड़े से हानि पहुंचती है। इसके लिये ३० मिलीलीटर डेमाक्राम ८०० से १००० लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टर खेत की फसल पर छिड़काव करने चाहिये।

लीफ स्पॉट तथा गाँवों के सड़न रोग से फसल को हानि पहुंचती है। लीफ स्पॉट नामक रोग से बचाव के लिये डाइफोल्टान के २% अथवा वाविस्टीन के ०.१% अथवा डायथेन एम-४५ के २% घोल से २ बार अवश्य छिड़काव करना चाहिये। साथ ही बुवाई के पूर्व बीज को वाविस्टीन के ०.२% अथवा थिरम के ०.३% अथवा केप्टान के ०.३% अथवा एग्रेसन जी. एन. के ०.२% घोल से उपचारित कर लेना चाहिये।

इन्हें आजमाएं

केले ज्यादा खा लेने पर दो छोटी इलायची खाएं, तुरन्त हज्म होगा।

अगर आपने आम ज्यादा खा लिप हों तो दो-चार जामुन खा लें और अगर जामुन ज्यादा खा लिप हों तो थोड़ा-सा नमक चाट लें।

तरबूज ज्यादा खा लेने पर दो चुटकी नमक खाएं। जब बच्चे के दांत निकल रहे हों, तब भुना हुआ सुहागा, शहद और मुलटूटी दो-दो माशा बारीक करके बच्चों के मसूढ़ों पर एक सप्ताह लगाने से दांत बिना तकलीफ के निकल आते हैं।

प्रातःकाल उठकर तांबे के बर्तन में रखा हुआ आधा किलो ठंडा जल पिएं। इसके निरन्तर सेवन से कब्ज हमेशा के लिए दूर होगी।

काली मिर्च पीस कर गाय के दूध से बने घी के साथ लेने से सब प्रकार की खुजली दूर हो जाती है।

गर्मी के दिनों में जिन लोगों के पैरों में निरन्तर जलन होती है, उनको पैरों में मेहंदी लगाने से लाभ होता है। जले हुए अंग पर सरसों का तेल लगाने से छाले नहीं पड़ते।

-प्रियंका मेता 'अंकु'

~: दयानन्द संस्थान के तत्वाधान में दशहरा एवं ~:

दीपावली पर यज्ञ एवम् प्रवचन ~:

दयानन्द संस्थान के तत्वाधान में विजयादशमी पर्व के पावन अवसर पर वेद मंदिर में यज्ञ एवं प्रवचनों का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में इब्राहीमपुर, हिरणकी, मुखमेलपुर, नत्थूपुरा हमीदपुर तथा खेड़ा खुर्द एवम् अन्य कई निकटवर्ती ग्रामों के प्रमुख व्यक्ति भारी संख्या में उपस्थित थे।

इस अवसर पर दयानन्द संस्थान की अध्यक्ष एवम् 'जन ज्ञान' की सम्पादक पंडिता राकेश रानी तथा क्षेत्र के प्रमुख किसान नेता श्री बलजीत सिंह मान ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जीवन पर विस्तार सहित प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि श्री राम ने वैदिक मर्यादाओं का प्रचार प्रसार ही अपने जीवन का मूल मंत्र बनाया था।

कार्यक्रम में उपस्थित प्रमुख व्यक्तियों में हमीदपुर के प्रधान श्री रमजी लाल, भारतीय किसान संघ के मंत्री सरदार कुन्दन सिंह तथा श्री इन्द्रराज सिंह भी शामिल थे। सभी उपस्थित जन ने दयानन्द संस्थान के कार्यक्रमों को सफल बनाने और क्षेत्र में वैदिक धर्म की महत्ता से जन साधारण को अवगत कराने की संकल्प व्यक्त किया। बहिन वसुन्धरा जी तथा कुमारी दिव्या एवम् श्री राधेश्याम शर्मा, श्री उदयनाथ कुशवाहा एवम् प्रो० अमरनाथ रावल का विशेष योगदान रहा।

~: दीपावली पर्व ~:

दीपावली के पावन प्रवचन पर वेद मंदिर इब्राहीमपुर में दयानन्द संस्थान के तत्वाधान में आयोजित हवन और यज्ञ में जहाँ अनेक ग्रामीण जन उपस्थित रहे वहीं राजधानी से भी अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने कार्यक्रम में भाग लिया।

आर्य समाज दीवान हाल के प्रधान श्री मूलचंद ने इस अवसर पर अपने भाषण में वेद की महत्ता एवम् स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक विचार धारा की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि वेद प्रचार के क्षेत्र में महात्मा वेदभिक्षु : के दिशा निर्देशन में दयानन्द संस्थान ने जो कार्य किया है, वह उन अनेक संगठनों के कार्य की तुलना में कहीं अधिक है, जिनके पास संस्थान की तुलना में कहीं अधिक साधन हैं। श्री मूलचंद ने महात्मा वेद भिक्षु: और अपने पिताजी विख्यात आर्य मनीषी स्वर्गीय लाला चतुरसेन के अनेक संस्करण भी सुनाए।

राजधानी के प्रमुख चिकित्सक डा० लक्ष्मण प्रसाद शास्त्री ने कहा कि वेद को घर घर में पहुंचाना ही महर्षि दयानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। उन्होंने कहा कि यदि आर्य समाज में शिथिलता नहीं आई होती और शुद्ध और संगठन का कार्य गतिमान रहता तो आज जिन समस्याओं से देश जूझ रहा है वे उसके समक्ष उपस्थित नहीं होतीं। उन्होंने कहा कि महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर हमें यह व्रत ग्रहण करना चाहिए कि हम वेद को हर हिन्दू घर-परिवार तक पहुंचाएं।

श्री मायाराम शास्त्री ने अपने प्रवचन में यज्ञ की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उससे पर्यावरण तो शुद्ध होता ही है, साथ ही परिवारों में संस्कार की क्रम भी बल पाता है। आज विदेशों में भी यज्ञ और हवन के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है, क्योंकि मानसिक और शारीरिक व्याधियों के निवारण में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस अवसर पर आर्य समाज जनकपुरी के उप प्रधान तथा दयानन्द संस्थान के प्रमुख सहयोगी श्री सत्यपाल आर्य और प्रो० अमृत लाल रावल ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

संस्थान के कार्य शांति पाठ के बाद कार्यक्रम का समापन हुआ।